VOL. VII PART-III JUNE 2001 (BI-MONTHLY)

JOTI JOURNAL

न्यायिक अधिकारी प्रशिक्षण संस्थान

उच्च न्यायालय, जबलपुर - 482 007

JUDICIAL OFFICER'S TRAINING INSTITUTE
HIGH COURT OF MADHYA PRADESH
JABALPUR-482 007
☎ 325995

कमर कसो

मित्रो यह अंक आप तक पहुंचते–पहुंचते ग्रीष्मावकाश समाप्ति पश्चात नया सत्र प्रारंभ हो चुका होगा। स्थान परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रहेगी। कुछ एक को अच्छा लगेगा कुछ एक को अटपटा भी। लेकिन सब रम जायेंगे। रमना भी चाहिए। रमना साधु का काम है। धूनी रमाई और साधु रम गए। धुन का अर्थ होता है किसी कार्य में बराबर लगे रहने की प्रवृत्ति।

प्रवृत्ति का अर्थ है चित्त का किसी ओर लगाव या झुकना। हम साधु नहीं संसारी व्यक्ति हैं लेकिन संसार चलाने के लिए वृत्ति भी करते हैं। हमारे संसार का सुगमता से चलना वृत्ति व्यवसाय पर निर्भर है। वृत्ति व्यवसाय में चित्त है तो वह अच्छे से चल जाती है। संसार भी चल जाता है व वृत्ति भी चलती है। अतः हमारा लगाव व झुकाव हमारी वृत्ति नौकरी की ओर होता है।

वृत्ति व्यवसाय एवं संसार दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। हम हमारी वृत्ति व्यवसाय को किस गति से चलाते हैं, कितना परिश्रम करते हैं, कितना रख–रखाव करते हैं इससे हमारे संसार पर भी प्रभाव पड़ता है। परिवारजन हमारे–आपके वृत्ति व्यवसाय– नौकरी पर निर्भर हैं। अतः उसका ठीक ठाक चलता रहना जरूरी है।

ऐसा करने के लिए उसकी देख रेख भी आवश्यक है। मनुष्य का चरित्र कुछ अजब–गजब है। यह इस लिए कि मनुष्य की प्रवृत्ति कुछ आलसी सी रहती है। कहावत भी है Men aparat man is king अर्थात हम अपनी मर्जी के मालिक हैं। लेकिन प्रकृति ने जितने जीव जन्तु निर्मित किए हैं उसमें मानव को छोड़कर सभी अपनी मर्जी के मालिक हैं। वो इसलिए कि वे प्रकृति के विरुद्ध जाकर कोई कृत्य नहीं करते। चिड़िया को रविवार के दिन देर से उठते नहीं देखा होगा न कि वीक एन्ड रेस्ट करते हुए। ऐसा भी नही है कि सूर्योदय के पूर्व वह उड़ कर नहीं चली गई हो या शाम ढलते वापस अपने घरोंदे में न लौटी हो। जंगल में चाहे शेर हो या लोमड़ी – आकाश में गरूड़ हो या गिद्ध प्रकृति के विरुद्ध कोई कृत्य वे करते नहीं हैं।

गीदड़ का शाब्दिक अर्थ तो सियार (जैकाल) से है। वह डरपोक प्रवृत्ति का (व्हलचर) होता है लेकिन भभकी तो उसकी भी प्रसिद्ध है। शेर भभकी नहीं देता। गीदड़ भभकी को जैकॉलस् थ्रेट कहते हैं। खाली पीली भभकी भर रहती है। वो चिल्लाता है शेर आया शेर आया लेकिन आता गीदड़ ही है लेकिन जब वास्तव में शेर आएगा तो उसका दूर दूर तक अता–पता न होगा। भभकी की प्रवृत्ति घातक होती है। घातक इसलिए कि हर कोई जानता है कि भभकी देने वाले की स्थिति क्या है वह किस स्तर का है।

हर कोई अपना स्तर अति रंजित करके प्रदर्शित करता है अर्थात है कुछ नहीं लेकिन दिखावा ऐसा कि बहुत कुछ है। सम्भवतः यह स्थिति और किसी के साथ नहीं होती। अतः यह बात मनुष्य के संबंध में लागू की जावे तो जरूरी है कि हर एक ने आत्म प्रशंसा के बदले आत्मचिंतन कर लेना चाहिए। आत्मचिंतन का परिणाम निश्चित सकारात्मक ही होगा।

हम भारतीय हैं। हमारे संस्कार हमारी संस्कृति के प्रति हमें गर्व है लेकिन गर्व होना परिणामदायक नहीं होता है। उन संस्कारों का सतत रूप से हमारे मन पर संस्कार होते रहना चाहिए। संस्कार सम्भवतः प्रकृति के निकट होते हैं अतः जितने स्वाभाविक क्रियाकलाप हमारे होंगे उतने ही मार्गदर्शित अनुशासित हम होंगे तब हमें किसी के द्वारा हांकने की आवश्यकता नहीं होगी।

हमें स्वयं को पहचानना है। यह भूल जाना है कि हम ज्ञाता हैं सब कुछ आता है। यह बात अभी अंतिम

सत्र में व्याख्यान के लिए पांचों ही माननीय न्यायाधिपति महोदय के व्यवहार से ज्ञात हुई। मैं अवाक रहा गया था। एक माननीय ने रात 12 बजे तक अध्ययन कर लेक्चर दिया। एक अन्य माननीय ने न्यायालयीन कार्य समाप्त होने के पश्चात अपने चेंबर में बैठकर तैयारी की व दूसरे दिन सुबह 11.30 का व्याख्यान था लेकिन सुबह 10 बजे से ही चेंबर में टिप्पण तैयार कर रहे थे। तीसरे माननीय महोदय का कथा कथन 3 बजे से था लेकिन सुबह 10 बजे से ही उनके स्टाफ के साथ वे उनके चेंबर में थे व तैयारी करके आए थे। एक माननीय महोदय पूर्णतः नोट्स तैयार करके लाए थे मानों उन्हें ही परीक्षा में बैठना हो। व इस प्रकार प्रत्येक माननीय अनुभवी होते हुए भी अपनी बात बताने को आने से पूर्व तैयारी (अध्ययन) करके आए थे। एक माननीय महोदय ने लगभग 20 पृष्ठों का लेख अग्रिम रूप से तैयार किया था जो लेक्चर के एक दिन पूर्व ही प्रशिक्षुगणों को वितरित भी किया गया था।

हमारी मानसिकता तो दर्शक श्रोताओं जैसी हो रही है। हम यह मानकर बैठे रहते हैं कि कीर्तनकार का तो काम है कीर्तन करना। वह अपने मनोरंजन हेतु ऐसा करेगा व हम श्रोता के रूप में बैठे रहेंगे व मन में अनेकानेक विचारों के साथ खोते रहेंगे। हम पूर्व तैयारी नहीं करेंगे यहां तक कि सम्बन्धित पुस्तकें भी आंखों के सामने नहीं रखेंगे। क्योंकि कीर्तनकार महाभारत के किसी भी प्रसंग को लेकर कीर्तन करे क्या फर्क पड़ता है हमें तो सम्पूर्ण महाभारत मालूम है। कीर्तनकार तो स्वान्तः सुखाय कीर्तन कर रहा है ऐसी हमारी मानसिकता है। हमें मालूम है ऐसी जो धारणा है वही खोखली धारणा है, रेत का टीला है, पैरों के नीचे से कब खिसक जायेगा पता भी नहीं लगेगा। जिनको जानने की इच्छा है वे भभकियों के हो हल्ले में सहमें बैठे होते हैं लेकिन वे विद्रोह नहीं करते, ललकारते नहीं हैं।

प्रशिक्षण के लिए हमें बुलाया जाता है कुछ नई बातें ज्ञात होती हैं विचारों का आदान प्रदान होता है, एकदूसरे को समझने का अवसर मिलता है। जानने को अथांग समुद्र है न जानने वाले के लिए वो जहां खड़ा है उतना ही उसके लिए विश्व है। बेहतर होगा कि हम भ्रमजाल से मुक्त हो व पठन पाठन इस कल्पना के साथ करें कि हमें तो मूलभूत बातें तक जानना है। संभवतः ये आधार ही हमारे में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकेगा। एक स्थान पर निम्न बात पढ़ने को मिली अच्छी लगी आपको भी बता रहा हूं।

REMEMBER YOUR PURPOSE -

- You are there to make a contribution to the institute.
- Be prepared to communicate how you can do that.
- Let them see the best you, you can be.
- Relax and enjoy the process.
- Be active participant.

मित्रों ध्याान रखना। आपका आत्मविश्वास, आपका निर्धार व आपकी तपस्या उस खोखलेपन को नष्ट कर सकती है जो केवल दिखावा भर है। उसे सत्य न मानें। उत्कृष्ट कर्म के लिए कमर कस लो (Gird up your loins and give it your best shot.)

पुरुषोत्तम विष्णु नामजोशी

● संस्कारित व्यक्ति मात्र मनुष्य से मानव बनता है।

● पद नहीं, आपका आचरण एवं व्यवहार आपका परिचय है।

समभाव कर्म

दिनांक 18 अप्रैल 2001 से 25 अप्रैल 2001 तक उन अतिरिक्त जिला न्यायाधीशों का प्रशिक्षण सत्र पूर्ण हुआ जो पिछले वर्ष पदोन्नत हुए थे। यह सत्र ग्रीष्मावकाश पूर्व का अन्तिम सत्र था। माननीय न्यायाधिपति एवं अध्यक्ष न्यायिक अधिकारी प्रशिक्षण संस्थान कमेटी श्रीमान सी.के. प्रसाद महोदय ने दिनांक 19 को उद्घाटन भाषण दिया व हिन्दु विवाह अधिनियम से संबंधित विषय का विहंगावलोकनात्मक भाष्य भी किया। उद्घाटन भाषण के रूप में श्रीमान प्रसाद साहेब ने कहा कि न्यायधीश के रूप में जब आप कार्य करते हैं तब आपमें कर्म के प्रति वचनबद्धता (कमिटमेंट) में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं होना चाहिये। आप संविधान के अंतर्गत संविधानिक पदाधिकारी (फंक्शनरी) के रूप में कार्य करते हैं। अतः हमारा कार्य समर्पित भाव से होना चाहिये। हमारी न्यायपालिका को जो प्रतिष्ठा पूर्व न्यायधीशों के गुणवत्ता तथा कर्म के प्रति निष्ठा के कारण मिली है उसे हमें आगे बढ़ाना है तथा यह तभी संभव है जब हमारा योगदान उसमें हो। ऐसा योगदान तभी संभव है जब हम हमारे कार्य के प्रति जागरूक हों। दो पक्षों के बीच एक व्यक्ति न्यायासन पर बैठकर निर्णय करता है यह पदीय गौरव की बात है अतः उनके विश्वास को बनाए रखने हेतु परिश्रम आवश्यक है। माननीय श्रीमान प्रसाद साहेब ने आगे यह भी कहा कि न्यायधीश के लिये यह आवश्यक है कि विषय वस्तु का विश्लेषणात्मक अध्ययन करे जिससे प्रकरण को समझकर न्याय करने में सुविधा होगी। अध्ययन वह सतत् प्रक्रिया है जिसका कहीं भी अंत नहीं होता है अतः पठन पाठन सतत् रूप से होता रहना है। संभव है कि न्याय सिद्धांत कुछ एक को अच्छे से मालूम होंगे लेकिन उनका व्यवहार में उपयोग में लाना ही कला है व यह सब अनुभव से संभव है। **विधि क्या है यह बात तो पता लग सकेगी लेकिन उसका अपवाद क्या है यह महत्वपूर्ण तत्व होता है** व उसी से न्यायधीश के योग्यता की परीक्षा होती है। न्यायदान किसी व्यक्ति विशेष की मर्जी के अनुसार नहीं होता है अपितु विधि के सिद्धांतों का अध्ययन आवश्यक है व उसका व्यवहार में प्रयोग में लाना भी मालूम होना चाहिये।

माननीय न्यायाधिपति श्रीमान दीपक मिश्रा महोदय ने बैंक गैरण्टी एवं निषेधाज्ञा के विषय पर भाष्य करने के पूर्व न्यायाधीश गणों को उनके व्यवहार विषय में कुछ बातें बताई। आहत मन से उन्होंने अपने विचार व्यक्त किए। माननीय महोदय ने कहा कि प्रशिक्षण सत्र में जबलपुर मौज मस्ती एवं आनंद से समय काटने के लिए आते हो ऐसी यदि धारणा है तो बड़ी भ्रामक धारणा है। आप जबलपुर में तफ़री करने हेतु नहीं आते हैं। यह धारणा भी बड़ी भ्रामक धारण होगी कि जो न्यायाधीश यहां आते हैं उन्हें विधि संबंधी पूर्ण जानकारी है तथा ज्ञान से सराबोर या संतृप्त हो चुके हैं। प्रशिक्षण सत्र में आपका आना विधि ज्ञान के विभिन्न विषयों को विभिन्न पहलुओं से देखने के उद्देश्य से होना चाहिये। ऐसे प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात मानवता की सेवा करना ऐसा उद्देश्य सतत् रूप से अनुभव होता रहे। प्रशिक्षण में आए न्यायाधीशों की पूर्व तैयारी क्या है यह उनके द्वारा पूछे गए प्रश्नों पर से ज्ञात होगा तब प्रशिक्षण देने आए अतिथि वक्ताओं के द्वारा प्रश्नों का हल बताया जा सकेगा कुल मिलाकर प्रशिक्षण का उद्देश्य ज्ञानवर्धन का होना चाहिये व इसलिए यह जरूरी है कि प्रशिक्षण काल में मार्गदर्शनात्मक बातों पर पूर्ण रूप से ध्यान केन्द्रित रहे। श्रीमान दीपक मिश्रा महोदय ने ये भी कहा कि आप एक लक्ष्य निर्धारित करें व उसे प्राप्त करने का पूर्ण निष्ठा के साथ प्रयत्न करें। प्रशिक्षण संस्थान से आप जुड़कर रहें न कि असंबंधी जैसा अनुभव करें या कि संस्था के साथ नगण्यता या उदासीनता या महत्वहीनता (इन्डिफरन्ट) का भाव नहीं रखें। न्यायाधीश यद्यपि एक सामान्य जन है लेकिन उसके कार्य की प्रकृति ऐसी होती है कि वह सामान्य जन जैसा व्यवहार नहीं कर सकता "I am I but I am not I" की स्थिति है। पद की

प्रतिष्ठा बनाकर रखना आपका कर्तव्य है लेकिन इसका यह अर्थ निश्चित नहीं है कि आप अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं करेंगे। माननीय न्यायाधिपति महोदय ने अपने समापन भाष्य में एक श्लोक का वाचन किया जो इस प्रकार है।

योगस्थः कुरू कर्माणि संगत्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयो : समो भूत्वा समत्व योग उच्यते।।

अर्थात जय अथवा पराजय की समस्त आसक्ति त्यागकर समभाव से अपना कर्म करो। ऐसी समता योग कहलाती है।

सत्रान्तर्गत माननीय न्यायाधिपति सर्वश्री सी.के. प्रसाद महोदय, श्रीमान दीपक मिश्रा महोदय, श्रीमान व्ही. के. अग्रवाल महोदय, श्रीमान एस.पी. खरे महोदय ने एवं श्रीमान ए.के. मिश्रा महोदय ने विभिन्न विषयों पर विस्तार से विचार व्यक्त किए। चार दिन तक माननीय न्यायाधिपति महोदय श्रीमान आर.पी. अवस्थी महोदय (सेवानिवृत्त) ने अपील रिवीजन सत्र प्रकरण आदि पर भाष्य किया एवं जो निर्णय निरीक्षण परीक्षण हेतु बुलाए थे उन पर विस्तार से चर्चा की।

विभिन्न विषयों पर विशेषज्ञों को निमंत्रित किया था। सर्वश्री टी.के. शाकल्ले विभागाध्यक्ष मेडिकल कॉलेज, जबलपुर, एफ.एस.एल. डिपार्टमेंट सागर से सर्वश्री आर.के. दुबे, एस.के. तिवारी, जे.के. अग्रवाल एवं एम.पी. गौतम श्री डॉ. जितेंद्र जामदार आर्थो सर्जन ने भी दुर्घटना व अपंगता पर अपने विचारों से मार्गदर्शित किया।

जिला स्तरीय न्यायाधीशगण सर्वश्री आइ.एस. श्रीवास्तव सचिव राज्य प्रशासनिक अधिकरण, श्री के.डी. खान सचिव म.प्र. उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति, श्री सी.व्ही. सिरपुरकर अति. रजिस्ट्रार (जे) म.प्र. उच्च न्यायालय जबलपुर ने भी विभिन्न विषयों पर अपने योग्य विचार व्यक्त किये।

●

TO KNOW THE RULE, KNOW THE EXCEPTION
EXCEPTION PROVES THE LAW

JUSTICE C.K. PRASAD

EXERT YOUR SELF SUCCESS HAS NO SHORT CUT

JUSTICE V.K. AGRAWAL

The will to win is worthless if you do not have the will to prepare. Sky scrapers take only a year to build but many years to plan. And, patience in planning, impatience in execution has worked wonders.

Those who don't read books have no advantage over those who can't.

Courtesy : Think inc. Batra.

सौ. मंजू नामजोशी, उच्च न्यायिक सेवा संवर्ग, अतिरिक्त निदेशक, न्यायिक अधिकारी प्रशिक्षण संस्थान के रूप में पदस्थापित हुईं।

जानने समझने योग्य बहुत कुछ

मित्रो! बहुत कष्ट होता है जब हम वरिष्ठ न्यायाधीश जिन्हें समय–समय पर पदोन्नति मिलते मिलते प्रथम श्रेणी के अधिकारी होने के पश्चात सामान्य अनुशासन व मर्यादाओं का पालन नहीं कर सकते, शिष्ट व्यवहार नहीं कर सकते हैं। यहां तक भी समझ में आ सकता है लेकिन हमने अशिष्ट व्यवहार किस कारण से ग्रहण कर लिए हैं? संस्कार सिखाए जाते हैं संस्कारित किया जाता है तो क्या अप संस्कृति व अशिष्टता का नैसर्गिक गुण है ऐसा मान कर अमर्यादित व्यवहार किया जाता है? लेकिन ऐसा नहीं है। कुछ एक लोग ही ऐसे होते हैं। प्रशिक्षण कक्षा में बैठे बैठे मार्गदर्शक को पूछना कि आपसे हम बैठे बैठे प्रश्न पूछ सकते हैं या उठकर पूछना पड़ेंगे। सामान्य कुर्सी पर ऐसे बैठना जैसे आराम कुर्सी पर बैठे हों। प्रशिक्षक प्रशिक्षणार्थी की ओर मुंह कर के बैठा है तो प्रशिक्षु सम्पूर्ण शरीर सहित बाजू कर के बैठा है क्या कहा जाय। दोष किसका है?

प्रशिक्षण हेतु पूर्व में जब ये ही प्रशिक्षार्थी आए थे तब विधिवत यूनिफार्म में आए थे अबकी बार कुछ एक रंगीन टाई में आए थे। एक ने तो कमाल ही कर दी। एक दम रंगीन वस्त्र में। पूछने पर कहा गया कि उसे तो आदेश ही नहीं मिला था। वो कोट तक साथ नहीं लाया था। उसे जबलपुर में कोट खरीदना पड़ा। आने को तो पूरा परिवार साथ में आया था।

प्रशिक्षण हेतु जो अतिथि भाष्य करने आते हैं वे संस्था की ओर से आमंत्रित होते हैं। आमंत्रित को उठकर अभिवादन करना एक सशक्त स्वस्थ परंपरा भारतीय संस्कृति की रही है। ऐसा नहीं है कि ये बात प्रशिक्षु वर्ग को नहीं मालूम। क्यों कर प्रशिक्षु प्रशिक्षण देने हेतु आने वाले विभागीय वरिष्ठ या कनिष्ट अधिकारियों के आने पर उठकर खड़े होते हैं। क्या ऐसा तो नहीं कि जो व्यक्ति नुकसान कर सकता है उसी से हम डरते हैं व शेष से अशिष्ट व्यवहार की सीमा तक बढ़ सकते हैं? प्रशिक्षण कक्षा में ऐसे इने गिने लोग होते हैं लेकिन उनका सक्रिय रूप से प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष विरोध करने की इच्छा बाकी लोगों को नहीं होती है? आत्म सम्मान को तिलांजलि मत देना।

एक श्लोक यहां प्रासंगिक है देखे।

लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च।
आद्दीत य तो ज्ञानं तं पूर्वमभिवाद्येत।।

अर्थात जिससे लौकिक, वैदिक और आध्यात्मिक ज्ञान को सीखें उसे पहले प्रणाम करना चाहिये।

एक और श्लोक वैज्ञानिक आधार पर–

उर्ध्व प्राणाह्युक्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानामिवादाभ्यां पुनस्ताः प्रति पद्यते।।

अर्थात बड़ों के आने पर छोटों के प्राण उपर उच्छ्वसित होते हैं इसलिये खड़े होकर प्रणाम करने से वे प्राण फिर अपने स्थान पर आ जाते हैं।

एक और श्लोक सामान्य व्यवहार के रूप में–

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसे बिनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यथोबलम्।।

अर्थात नित्य बड़ों की सेवा और प्रणाम करने वाले पुरूष की आयु, विद्या, यश और बल ये चारों बढ़ते हैं।

ये कुछ प्रसंग हैं पिछले प्रशिक्षण वर्ग के। ध्यान रहे गलत कार्यों का मौन समर्थन भी अनुचित कृत्य करने वालों को पुरस्कार हो सकता है।

प्रशिक्षण हेतु आई महिला न्यायाधीशों के प्रति हमारा कर्तव्य है कि उनके प्रति आदर दर्शाएं एवं ऐसा भाव बनाकर रखें। स्त्री दाक्षिण्य का व्यवहार भी हो। दाक्षिण्य शब्द सरलता और उदारता वाचक है।

प्रत्येक न्यायाधीश का यह कर्तव्य है कि अपने न्यायालय में बैठे। न्यायालयीन समय में कभी कभार किसी समस्या के कारण हमें अन्य सहयोगी न्यायाधीश के पास शंका समाधान हेतु जाना पड सकता है। लेकिन ऐसा नैमित्यिक क्रम के रूप में होने लग जाय तथा अधिक समय तक चेम्बर में ही ये बैठे रहे तो अनावश्यक रूप से चर्चा का विषय हो जाता है।

लेख 'प्रक्रिया विधि पालन में उपेक्षा न हो' (दंड प्रक्रिया) पृष्ठ 38 पर भी एक बात बताई है। इस स्तंभ में विशेष रूप से खुलासा किया जा रहा है ताकि इस विषय पर और ध्यान दिया जा सके। धारा 228 (1) क के अंतर्गत सत्र न्यायालय को यह शक्ति है कि रेकार्ड देखकर एवं पक्षकारों को सुनने पश्चात यह अनुभव हो कि यह प्रकरण मजिस्ट्रियल ट्रायल के रूप में सुनने योग्य है तो ऐसी धाराओं का चार्ज लगाकर प्रकरण मुख्य/न्यायिक दंडाधिकारी को भेजना चाहिये। लेकिन ऐसा नही होता। चार्ज लगाना तो दूर यह भी नहीं लिखा जाता कि किन किन धाराओं का अपराध बनता है ताकि विचारण न्यायालय उन धाराओं का चार्ज लगाएँ। सत्र न्यायालय ने ये लिखा कि सत्र न्यायालय द्वारा सुनवाई योग्य आरोप नहीं बनता व प्रकरण मजिस्ट्रेट कोर्ट में भेज दिया। मजिस्ट्रेट ने पुनः यह मानते हुए कि सत्र न्यायालय द्वारा सुनवाई योग्य अपराध बनता है वापस सत्र न्यायालय को भेजा व ऐसा आना जाना चलता रहेगा, तो क्या होगा। प्रावधान ये कहता है कि यदि सत्र न्यायालय द्वारा एकान्तिक रूप से प्रकरण सुनने योग्य नहीं है तो सत्र न्यायालय उचित धाराओं का चार्ज लगा सकेगा व प्रकरण मुख्य/न्यायिक दंडाधिकारी को सुनवाई हेतु वापस कर सकेगा। ऐसा न करने का कोई औचित्य नहीं है। सत्र न्यायालय मजिस्ट्रियल कोर्ट से ऊँचे दर्जे का न्यायालय होता है अतः उसका कार्य मार्गदर्शित करने योग्य हो।

अभी हाल में अतिरिक्त जिला न्यायालयों के लिए प्रशिक्षण वर्ग पूर्ण हुआ। संबंधित न्यायाधीशों के निर्णय आदि निरीक्षण परीक्षण हेतु बुलाये थे। आश्चर्य तब हुआ जब यह पाया कि इतने वरिष्ठ न्यायाधीशों को दावा प्रस्तुत होने पर सही सही आदेशिका क्या लिखना यह भी नहीं मालूम। निर्णयों में न्यायालय के नाम का शीर्षक क्या बनना चाहिये ये तक नहीं मालूम। इस विषय पर अभी अभी **ज्योति दिसम्बर 2000** की **पत्रिका में पृष्ठ 675** पर भी विस्तार से **'वादों का संस्थित किया जाना'** में लिखा है। **शीर्षकों के संबंध में अक्टूबर 1999 के पृष्ठ 375 से 381** तक विस्तार से बताया है। वास्तव में यह उपेक्षा पत्रिका के प्रति नहीं है अपितु स्वयं के प्रति है। यह उपेक्षा इसलिए नहीं है कि हम समझ नहीं सकते हैं अपितु ऐसा लगता है कि इस कारण से है कि हम सब कुछ जानते हैं। एक स्थान पर पढा था कि जो व्यक्ति पढना जानते हुए पढ़ता नहीं है उसकी स्थिति निरक्षर से बेहतर नहीं होती है।

TO BE A JUDGE TAKES KNOWHOW PERHAPS EVERY ONE TAKES IT ON ANY HOW.
THE QUALITY OF OUR WORK HAS EVERYTHING TO DO WITH OUR SUCCESS IN LIFE.

चैतन्य का जागरण

न्यायाधिपति विजय कुमार अग्रवाल

29.1.2001 से प्रारंभ हुए पुनर्निवेशन (फीड बैक) सत्र में, जो कि सन् 2000 के नव नियुक्त व्यवहार न्यायाधीशों के लिए था में माननीय न्यायाधिपति श्रीमान व्ही.के. अग्रवाल महोदय ने उद्‌घाटन भाषण के रूप में अपने विचार व्यक्त किए। जमीन से जुड़े व्यक्तित्व के द्वारा अभिव्यक्त विचार सहजोद्‌गार थे। विचारों की अभिव्यक्ति सहज–सुलभ लेकिन प्रभावपूर्ण एवं मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित करने वाली एवं समझाने योग्य भाषा में थी। जो भाषा थी जैसी थी, जैसी अभिव्यक्त की गई वह मानों आपस में बोलचाल हो रही है ऐसी ही थी। उक्त अभिव्यक्ति को तोड़े मरोड़े बगैर यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, वह इसलिए कि पढ़ने वाला प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करे कि किसी बात के सहज रूप से किसी के गले उतारने के लिए किसी औपचारिकता की आवश्यकता नहीं है। जो समझा, जो किया, जो पाया, जो देखा उसे अभिव्यक्ति के धागे में पिरो दिया है। यह माला विजयश्री की है। धैर्य की, सीमित भाष्य करने की निर्णय न्यायाधीश का दर्पण होने की, भाग्य भरोसे न रहकर परिश्रम द्वारा भाग्य की दिशा बदलने की, निष्ठा और चरित्र की, समय की पाबंदी की, पारस्परिक संबंधों जैसे अनेकानेक फूल आप माला में देखेंगे। इन गुणों की खुशबू महकेगी, भीनी भीनी गंध होगी। जो सहज अनुभव होगी। लेख पढ़ते पढ़ते हम आप गतिशील होंगे। पैर अपने आप थिरकेंगे, वैचारिक आंदोलन होगा व कृतित्व के प्रति प्रेरणा जागृत होगी जो व्यक्तित्व निर्माण का आधार एवं निर्धार बन सकेगा।

संपादक

सबसे पहले आप बधाई के पात्र है कि मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा अब जो, मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा और छत्तीसगढ़ न्यायिक सेवा के आप सदस्य बन सके हैं कठिन परिश्रम से आप आये होंगे इस सेवा में, मेहनत की होगी पढ़ाई लिखाई के दौरान, कॉम्पिटीशन की तैयारी के दौरान और उम्मीद करना चाहिए कि जब आपने अपने 3 महीने गुजारे हैं, इस सर्विस में, इस संस्था के साथ, तब भी आप लगातार मेहनत करते रहे हैं। न्यायाधीश का पद अन्य किसी सेवा से एक विशिष्ट स्थान रखता है, इसमें कोई दो मत नहीं है। इस संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट ने भी यही कहा है कि न्यायिक सेवा से जो जुड़े न्यायाधीश गण हैं, हम आजकल अपने को न्यायिक अधिकारी कहलाना पसंद करते हैं इससे बहुत रिस्पेक्टेबुल सम्मानजनक शब्द है, न्यायाधीश। वह किसी भी श्रेणी का न्यायाधीश हो। हम अपने को या तो मजिस्ट्रेट कहते हैं या कहते हैं जुडीशियल ऑफीसर। अब आप लोगों के साथ–साथ मैं भी यही कहने लगा हूं। पर मेरे विचार से न्यायाधीश शब्द बोले जाने से ही अपने आप में एक सम्मान की तृप्ति होती है जो जिस व्यक्ति से आप बात करते हैं। अगर उससे यह कहें आप कि मैं जुडीशियल ऑफीसर हूँ, तो वह आपको करीब–करीब ऐसा मानेगा, जेसे आप किसी और विभाग के अन्य अधिकारी की तरह हैं या लगभग उसके समकक्ष है। जब आप कहते हैं कि मैं न्यायाधीश हूं, तो न केवल आपको स्वयं गौरव का भान होता है, बल्कि सामने वाले के मन में भी सम्मान की भावना जागृत होती है। तो अपने को सोते उठते यह ख्याल बिलकुल रखना चाहिए कि हम न्यायाधीश हैं, न्यायिक अधिकारी से भी बढ़कर जो न्यायाधीश की गरिमा है, उसका हमें पालन करना चाहिए। न केवल 11 से 5 या 11 से साढ़े पांच आजकल, बल्कि अलावा भी आपका समाज में परिवार में एक विशिष्ट स्थान तभी बन सकता है, जब आप इस गरिमा का ध्यान रखें। आप इसकी

शान में, झूठी शान में मत आये, उसकी जो वास्तविक गरिमा है, उसका जो वास्तविक सम्मान है, बैलेन्स है, वह आप उसे मेन्टेन करें और उसके अनुरूप अपना आचरण और कार्य करें बतौर न्यायाधीश के आपसे कड़ी मेहनत तो अपेक्षित है ही, इसमें कोई दो मत नहीं है कि जो न्यायाधीश होता है, वह जीवन भर विद्यार्थी बना रहता है, जब तक कि उसके कैरियर का, उसकी सर्विस का उसके कार्य का समापन नहीं हो जाता। कोई भी दिन ऐसा नहीं होता, जब वरिष्ठ से वरिष्ठ कुर्सी पर बैठा हुआ न्यायाधीश कोई नई बात न पूछे पर इसके लिए यह आवश्यक है कि उसमें सीखने की इच्छा होना चाहिए। अगर आपने न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठते ही यह मान लिया कि आप सर्वज्ञान सम्पन्न हो गये, तो यह गलत धारणा बहुत जल्दी टूट जाती है। अगर आपने यह माना कि न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठकर हमें पक्षकारों की न केवल सुनवाई करना है, बल्कि दोनों पक्षों को जो भी कहना चाहते हैं, उसमें वास्तविकता कितनी है, उसमें छल कपट कितना है, उसमें झूठ कितना है, उसमें तथ्यों का ज्ञान कितना है और कानून की बात कितनी निहित है, यह सब बातें अगर हमें समझनी है, तो इसके लिए सबसे पहले न्यायाधीश का यह गुण होना चाहिए कि **उसे थोड़ा धैर्य से काम करना होगा।** सुनवाई में धैर्य यह तो पहली आवश्यक वस्तु है। **झुंझलाना** यथा संभव कम करना चाहिए, बहुत आवश्यक पड़ने पर यह संभव है, लेकिन आपको फिर भी नम्र रहना चाहिए कोर्ट के ऑर्च में जब भी आप काम करते है, तो एक मूल बिन्दु जो आपको ख्याल रखना चाहिए कि आपको बोर्ड पर बैठकर कोर्ट के डायस पर बैठकर केवल उतनी **बातचीत** करने का प्रयास करना चाहिए, जितनी परम आवश्यक है और मामले के तथ्यों या विधि के प्रश्नों से संबंधित है अन्यथा बातचीत अकसर विवादों और परेशानियों को जन्म देती है। हम किसी मत से सहमत नहीं है, तो हमारे आदेश से वह बात परिलक्षित होती है। पर इसके लिए यह जरूरी नहीं है कि आप जो अभिभाषक गण महोदय या पक्षकार कह रहे हैं उसे व्यक्तिगत रूप से लेकर विवाद करने लगे या नाराज हो जाएं, उन्हें अपनी बात कहने का हक है, मानना या न मानना आपके विवेक पर निर्भर है और विवेक हमेशा जुडीशियस होना चाहिए इसलिए विवेक के साथ हमेशा शब्द उपयोग में आता है न्यायिक विवेक Discretion आपको है, आपको पावर्स दिए है, शक्तियां दी गई है, लेकिन आपकी वह जो सन्निहित शक्तियां हैं वह बंधी हुई हैं कानून से और कानून की परम्पराओं से, स्थापित परम्पराओं से इसलिए discretion का मतलब मनमानी नहीं। Discretion का मतलब है वह व्यवस्था जो विधि के अनुसार उचित और संभव है। इसलिए जब भी discretion word use होता है, तो judicial discretion न्यायिक विवेक का उपयोग होता है और उस न्यायिक प्रयोग के विवेक में जो बात आपको उचित लगे वह आप करने के लिए स्वतंत्र हैं न्यायिक विवेक आपका कैसे जागृत होगा? यह तभी जागृत होगा, जब आपको विधि और तथ्यों का पूर्ण ज्ञान हो।

विधि के ज्ञान के लिए अभी प्रारंभिक अवस्था में आपको बहुत ज्यादा केस लॉ पर जाने की जरूरत नहीं है। **केस लॉ** का मतलब हाईकोर्ट और सुप्रीमकोर्ट के निर्णय, अन्य हाईकोर्ट के भी निर्णय, म.प्र. हाईकोर्ट के निर्णय, छत्तीसगढ़ हाईकोर्ट के निर्णय। यह निर्णय आपको जानना चाहिए, पर उससे भी ज्यादा आवश्यक बातें ये हैं कि आपको **प्रोसीज़रल** लॉ और **बेसिक सब्सटेन्टिव** ला इस पर पूरी जानकारी और पकड़ आपको होनी चाहिए। प्रोसीज़रल लॉ का अगर आपको ज्ञान करना है, तो आपके लिए यह परम आवश्यक है कि आप न केवल सिविल प्रोसीजर कोड और क्रिमिनल प्रोसीजर कोड में अच्छी पकड़ रखें, इसका बार–बार अध्ययन करें। यह मानकर न चलें कि हमने चूंकि लॉ की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है या वकालत कर ली है या इतने दिन न्यायाधीश के रूप में कार्य कर लिया है इसलिए हमें उस बात की जानकारी है ही। मैं फिर कहूंगा, हर बात को व्हेरीफाई करना चाहिए उसको फिर से दोहराना चाहिए, उसकी किताब खोलकर देखना चाहिए, खास तौर से जब विधि के ऐसे प्रश्न निहित हो जिनके संबंध में आपका ज्ञान या आपकी राय बिलकुल स्पष्ट नहीं है, आप

दोनों पक्षों के अभिभाषकों को सुनने के बावजूद और सुनवाई के दौरान आवश्यक रूप से किताब अपने आप रखें और उसको खोलकर पढ़ते चलें ताकि आप यह समझ सकें कि वह जो कह रहे हैं, उसमें कितनी वास्तविकता है और कितनी वह वास्तविकता से परे है और अगर आपके मन में कोई शंका है, तो आप उसी समय उनसे प्रति प्रश्न नम्रता से (politely) कर सकते हैं। लड़ने की जरूरत नहीं है किसी से नाराज होने की जरूरत नहीं है, इरीटेट होने की जरूरत नहीं है।

कोर्ट कंट्रोल कैसे करें, यह एक आर्ट है और यह आर्ट मास्टर करना बहुत कठिन है, श्रम साध्य भी है और उसके लिए आपको ज्ञान होना चाहिए। अगर आप अज्ञानी है, अगर आप नहीं जानते उस विषय को या विधि को तो हो सकता है कि जो बात आपको प्रारंभिक रूप से अच्छी लग रही है यद्यपि उसमें तथ्य नहीं है, उससे आप सहमत हो जाएं तो आपका बेसिक कन्सेप्ट विधि का बिलकुल स्पष्ट होना चाहिए, कि जो विवाद का विषय है, वह किससे संदर्भित है, उसके संदर्भ में विधि कहां मिलेगी और वह विधि है क्या। इतनी बातें अगर आप समझ सकें, तो आप धीरे–धीरे अपनी कोर्ट की जो प्रक्रिया है, उसमें पारंगत होते जाएंगे, इसके साथ साथ सी.पी.सी. और सी.आर.पी.सी. के साथ साथ आपको सिविल कोर्ट रूल्स एण्ड आर्डर्स (क्रिमिनल) यह डिस्ट्रिक्ट कोर्ट के जो बने हैं, इसकी जानकारी बहुत परम आवश्यक है। मैं कहूंगा कि इसमें इतनी विस्तार से सब बातें समझाई गई हैं कि किस प्रक्रिया को किस प्रकार से पालन करवाना है। वह प्रक्रियात्मक बात आपको सिर्फ सी. पी.सी. और सी.आर.पी.सी. में नहीं मिलेगी, इससे भी ज्यादा आपको इल्यूमिनेशन मिलेगा, इससे भी ज्यादा आपको प्रकाशन मिलेगा सिविल कोर्ट के रूल्स एण्ड आर्डर क्रिमिनल एण्ड सिव्हिल में हर स्थान पर हर चेप्टर के संदर्भ में आपको रूल्स एण्ड आर्डर में गाइडेन्स मिलता जाएगा, तो रूल्स एण्ड आर्डर (क्रिमि.) रूल्स एण्ड आर्डर सिविल में जिसे आजकल सिविल कोर्ट रूल्स कहते है। और सी.पी.सी. एण्ड सी.आर.पी.सी. इनका अध्ययन तो आप विशेष रूप से करें।

जब भी आप किसी क्रिमिनल साइड में काम करते हैं, (फौजदारी की तरफ) जब आप किसी अभियुक्त को सजा देते हैं, तो एक बात बहुत जरूरी मैं आपको विनम्रता से बताना चाहूंगा कि बहुत सीनियर जज़ेज भी इस बात में धोखा खा जाते हैं कि एक्चुअल पनिशमेंट दंड का जो माप है, वह कितना होना चाहिए यानी सजा का जो क्वांटम है, वह बहुत इम्पॉर्टेन्ट चीज है। आपके सारे फैसले को वह धूमिल कर सकता है अगर आपने सजा सही नहीं दी है और सजा के साथ–साथ आपको स्पष्ट रूप से यह भी बताना चाहिए कि किस अपराध में आप क्या सजा दे रहे हैं अगर कारावास के दंड के साथ–साथ अर्थदंड भी कर रहे हैं तो अर्थदंड डिफॉल्ट में वह कितनी सजा भुगतेगा। यह भी आपको स्पष्ट रूप से बताना चाहिए। कारावास का दंड साधारण है या कठोर है, सश्रम है यह भी आपको अपने निर्णय में स्पष्ट रूप से लिखना चाहिए। ऐसा नहीं लिख सकते हैं कि धारा 279, 337 में मैं दंडित करता हूं और 4 महीने और 600/– रुपये के अर्थदंड के दंडित करता हूं। चाहे वह मोटर व्हीकल एक्ट का भी केस हो, हर आफेन्स में आपने अलग–अलग क्या दंड दिया और कैसे कैसे आपने उसे दोषी पाया, यह आपके जजमेंट से स्पष्ट परिलक्षित होना चाहिए।

सिविल में जब आप डिक्री बनायें, जब आपने पूरा फैसला लिख दिया तो आप जब डिक्री बनाते हैं, जयपत्र बनाते हैं, तो उसमें यह बात स्पष्ट रूप से लिखना चाहिए कि आपकी डिक्री में क्या–क्या निर्देश हैं, अगर आप उन को क्लाज़ वाइज़ 1, 2, 3, 4 एक दो तीन चार अलग–अलग टुकड़े में बांटकर लिखते हैं, तो आपको एक्झीक्यूशन के समय कभी दिक्कत नहीं होगी अगर जायदाद का झंझट है, लैन्ड का झंझट है, एन्क्रोचमेंट का झंझट है तो सबसे पहले जब प्लेन्ट आए, तब आप यह देखें, कि उसके साथ झगड़े वाली जगह का उचित मैप, केवल नजरी नक्शा कर के जो लगा देते हैं, कई बार और उसमें न कहीं बाउन्ड्री रहती है और न डिस्क्रिप्शन

रहता है न नाप रहता है और विवरण नहीं रहता है, वो तो नहीं लगा है अगर वो लगा है, तो आप उनसे आर्डर 6 नियम 5 सी.पी.सी. के अन्तर्गत विशेष बात पूछ सकते हैं बेटर पर्टीकुलर्स देने को कह सकते हैं। अगर आपकी डिक्री व्हेग (अस्पष्ट) रही, तो आप जब उसे एक्जीक्यूट करेंगे, तो either it would become inexecutable or would give rise to many complications further litigation and that would give you a great headache and then ..... आप जब निष्पादन कोर्ट की तरह काम करते हैं, तब डिक्री के पीछे (गुणावगुण देखना) जाने की बाध्यता आप पर बंधनकारी नहीं रहती है, इसलिए आप पीछे नहीं जा सकते हैं और उसको जैसे को तैसा निष्पादित नहीं कर सकते हैं क्योंकि उसकी जो शर्तें हैं, वह स्पष्ट रूप से उसमें लिखी नहीं रहती है तो जब आप खासतौर से सिविल में काम करें, तो डिक्री पर विशेष रूप से ध्यान दें, क्योंकि आपने फैसला तो कर दिया, लेकिन डिक्री वेग (अस्पष्ट) हुई, तो आपका अच्छे से अच्छा फैसला भी अपना महत्व और उपादेयता खो सकता है पक्षकारों के लिए भी और अपीलेट कोर्ट जिसमें उच्चतम न्यायालय है, उनमें आपके जजमेंट को एप्रीशिएट नहीं किया जावेगा। उनकी कीमत कम हो जाएगी, आपकी कीमत कम हो जाएगी। Judge is nothing but is shown by judgment, You are not known by your faces. most of the Judges good or bad are known by their orders and judgments.

जब लगातार किसी के अच्छे आर्डर आते हैं, तो मन में विचार यह होता है कि यह जज बहुत अच्छा है यानी मैं आपको नाम बताए बगैर कह सकता हूं कि एक जज साहब के लगातार अच्छे फैसले मिल रहे थे, लगातार उनकी अपीलें सुनने को मिल रही थीं, मैं उन्हें व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता था, जब ट्रांसफर का मौका आया, जो वह सज्जन पहली बार मेरे पास आए और अपना नाम बताया, उनकी कुछ समस्याएं थी वह कुछ चाहते थे। मैंने उनसे सिर्फ एक सवाल किया कि आप कहां जाना चाहते है, आप मुझे बता दें। यथा संभव मैं आपको वहीं पदस्थ करने का प्रयास करूंगा अगर कोई विशेष कठिनाई हुई तो नहीं संभव होगा पर साधारण तौर से आपकी पदस्थापना वहां हो जाएगी, जहां आप चाहते हैं उस जज को मैं पहले से नहीं जानता था किसी किस्म से परिचय नहीं था और उन्होंने कुछ अपनी च्वाइस अपनी इच्छा जाहिर की, भाग्य से वह स्थान उनके लिए उपलब्ध था, उनकी वहां पदस्थापना हो गई। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि उन पर कोई एहसान हुआ, उनके काम ने उनका यह रिवार्ड दिया, उनको यह इनाम मिला, उसके लिए उनको अपना परिचय देने की जरूरत नहीं पड़ी कि मैं अच्छा काम करता हूं, मैं ईमानदार जज हूं, यह उनको कहने की जरूरत नहीं है यह उनके निर्णय और आदेश से स्पष्ट परिलक्षित था। बाद में मैंने और लोगों से भी उनके बारे में उनकी राय जानी, उनके मंत जाने, उनके डिस्ट्रिक्ट जज साहब ने, उनके पोर्ट फोलियो जज साहब से, सभी ने एकमत से यही कहा कि वह जज अच्छे हैं। तो इसका स्पष्ट मतलब है कि जब आप काम करते हैं, जो कागज में आप लिखते हैं, वह आपके बारे में एक आईना है एक तरह से जो आपका चेहरा दिखला देता है तो न्यायाधीश का आइना है उसके आर्डर और जजमेंट। जितने अच्छे मेहनत से आप करेंगे और जिस स्थिति में आज आप हैं, 2, 3 महीने चार महीने अभी आपको हुए हैं अगर आप 4, 5 साल लगातार मेहनत करेंगे, तो जैसे बैंक मे बैलेन्स बढ़ता है, अपनी जो कटौती करते हैं खर्च में और पैसे बैंक में जमा करते हैं, धीरे धीरे वह एक पूंजी बढ़ जाती है आपकी तथा वह आपके आपत्ति विपत्ति में काम आती है और आपके मन में सुरक्षा की भावना पैदा होती है। बिलकुल वही बात आपको न्यायाधीश की हैसियत से कठिन परिश्रम करने के पश्चात वही अनुभूति होगी। यह जो पूंजी आप इकट्ठी करेंगे, आज जो मेहनत करेंगे, वह मेहनत निश्चित रूप से 5 साल के बाद यह बात आप भी महसूस करेंगे कि जो आज 31 जनवरी 2001 को कही गई थी, वह कितनी बात सच है, इसका आप अनुभव करेंगे।

दूसरी तरफ आपके पास विकल्प यह है कि आप न्यायाधीश हो गये हैं आप दंडाधिकारी हो गये हैं, आपके पास अधिकार हैं आप उनका दुरुपयोग करें, अपनी छवि खराब करें, समाज में अपना नाम बदनाम करें आप संस्थान को भी थोड़ा सा लोगों की निगाह में नीचा लाए और एक ऐसी स्थिति होगी, जब आपकी विभागीय जांच शुरू होगी, शिकायत होगी और आपको दंड मिलेगा, आप लोगों के सामने गिड़गिड़ाते घूमेंगे, ऐसे भी न्यायाधीश है, मुझे कहने में बड़ा दुख हो रहा है, अच्छा भी नहीं लगता है उनकी बात सुनकर कई बहुत सीनियर है, लगभग साथ रहे हैं, पर जैसा मैंने आपको उदाहरण दिया अच्छे न्यायाधीश का, ऐसे भी न्यायाधीश हैं जो करीब करीब हमारे समकक्ष थे और आज करीब–करीब दर–दर भटक रहे हैं। अपने किसी पनिशमेंट की वजह से अपनी किसी दुरावस्था की वजह से । मेरा यह मानना है कि आप लोग बहुत भाग्यवान हैं कि आप एक ऐसी संस्था से एक ऐसी सेवा से आप जुड़े है कि जहां आप अच्छा काम करेंगे, सीधे रास्ते पर चलेंगे, तो आपको कोई परेशान नहीं करेगा। आपको जो आपके ड्यूज हैं साधारण तौर से काफी मात्रा में मिलते जाएंगे, आपसे किसी तरह की वांछा नहीं की जाती, कोई बहुत ज्यादा expectations नहीं है, सिवाय इसके कि जो आपकी अपनी ड्यूटी है, जो आपका कर्तव्य पालन है, वह आप ईमानदारी निष्ठा और मेहनत से करें। तीन बातें आपके लिए बहुत जरूरी है, अगर आपका न्यायाधीश का चरित्र नहीं है, तो मैं तो यह मानता हूं कि वह न्यायाधीश होने लायक नहीं हैं। **न्यायाधीश का चरित्र क्या है,** सबसे पहली बात है ईमानदारी। ईमानदारी में भी दो किस्म की ईमानदारी होती हैं, एक तो सीधा यह हैं कि आप प्रलोभन में पड़ गए और छोटे छोटे consideration में अपनी इज्जत खराब कर लें। दूसरा यह होता है कि आपके मित्र आ गये, आपके संबंधी आ गये, आपके और कोई परिचित आ गये आप किसी और दबाव में आ गये और आपने किसी खास किस्म का आदेश या निर्देश अपने न्यायिक अधिकारों के पालन में कर दिया, वह भी उसमें शामिल हैं। तीसरा यह है कि आपने काम न करने के लिए कोई वजह ढूंढी। अगर आप अपने कार्य को निष्ठा से नहीं कर सकते हैं, पूरी मेहनत से नहीं करते हैं, तो मेरे हिसाब से तब भी आप ईमानदार नहीं हैं तो जितना काम आपकी क्षमता के मुताबिक आप करने के लिए सक्षम हैं, उसको करने में पीछे नहीं हटें। आपसे कोई यह उम्मीद नहीं करता है कि आप अपनी क्षमता से अधिक काम करें, **लेकिन क्षमता से कम काम करना भी अपने आप में मेरे हिसाब से एक न्यायिक अविवेक का** काम तो है ही और न्यायिक अधिकारी को किसी भी किस्म का अविवेक करने का अधिकार नहीं है। अगर वह दूसरों के लिए न्यायदान का अधिकारी है, तो सबसे पहले उसको अपनी अन्तरात्मा के अंदर से यह बात महसूस करना चाहिए कि मैं जिस आसन पर बैठा हुआ हूं, उसके प्रति लोगों का सम्मान बढ़ें।

अभी जैसे मैंने कहा कि आप अपने आपको न्यायाधीश कहते हैं, तो लोगों के मन में आपपपके प्रति सम्मान जागता है, इसका कारण क्या है? इसका कारण सिर्फ यह है कि आपके पूर्वज रहे, 100 साल, डेढ़ सौ साल जब से यह संस्था चल रही है, उन्होंने कुछ पुण्य अर्जित किया, कुछ अपने लिए शुभेच्छा पैदा की अपने अच्छे काम से निष्पक्षता से ईमानदारी से कठोर परिश्रम से अपने लिए एक वातावरण बनाया 'ओरां, (aura) एक प्रभा मंडल बना, उस प्रभा मंडल का लाभ आप भी उसमें ले रहे हैं, क्योंकि आप उस संस्था से जुड़ गए है तो उस प्रभामंडल को बढ़ाओ, कम मत करो। उसको किसी किस्म से अगर आप कम करोगे, तो आप अपना और पूरी संस्था का नुकसान करते हैं। प्रभामंडल को बढ़ाने के लिए कोई बहुत अतिरिक्त प्रयास करना है, ऐसा नहीं है, वही निष्ठा, चरित्र और कठिन परिश्रम अगर आपने इतना किया, साधारण से, यहां पर बहुत super intelligent judges super personality की जरूरत नहीं है। जितनी हममें क्षमता है, जितनी हममें बुद्धि है, जितना हममें विवेक है, उसका अगर हम सदुपयोग करते हैं, कोई कारण नहीं है कि आप में से हर एक बहुत अच्छा न्यायाधीश बन सकता है नाम कमा सकता है और अपने लिए समाज में संस्था में अपने सुपीरियर्स में अपने

जूनियर्स में सब के मन में अपने लिए इज्जत पैदा कर सकता है। जब आपका नाम लिया जाता है, 5, 10 साल के बाद तो आपको महसूस होगा कि कुछ लोग आपका नाम आते ही मुस्कराने लगते हैं, यह मेरा एक व्यक्तिगत अनुभव है कि जब कभी कमेटी में फुल कोर्ट में कुछ जज़ेज का जब नाम आता है, तो लोग हल्का सा व्यंगात्मक मुस्कराते हैं जब उनका प्रमोशन का समय आता है, भले ही उनको प्रमोशन मिल जाए, भले उनके रिकार्ड में कुछ न हो, इसलिए वह शायद प्रमोशन के या किसी अन्य बेनीफिट के पात्र माने जायं, पर उनके प्रति जो लोगों के मन की भावना है, उनके सुपीरियर्स के मन की भावना है, वह बिलकुल स्पष्ट जाहिर होती है और दूसरी तरफ ऐसे भी न्यायाधीश हैं, जिनका नाम आने के पहले करीब–करीब यह कह दिया जाता है कि नहीं यह तो बहुत ही अच्छे जज हैं, न इनके रिकार्ड को देखने की जरूरत है और न ही इनकी कोई डिपार्टमेंन्टल इन्क्वायरी, व्हिजिलेन्स से भी पूछने की जरूरत नहीं है। Everybody at once on reflect, बिना किसी प्रयास के यह बोलता है कि नहीं यह तो बहुत अच्छा जज है। and within a second he is clear तो छवि दूसरे हिस्से की बनाईये जो बाद वाला उदाहरण दिया है आप सबकी छवि ऐसी बन सकती, है जब आपके बारे में यह कहा जाय कि इनके बारे में तो कुछ हो ही नहीं सकता। He is very good judge, judicial officer बोलते चालते मैं रूक गया, he is very good judge आपको यह ध्यान रखना है, प्रयास करना है, तो कोई कारण नहीं है कि **आप वहां तक न पहुंचे, जहां तक आपको भाग्य ले जाय लेकिन आपका परिश्रम ले जाय।** कोई और बाधा आपके रास्ते में नहीं आएगी ऐसा मेरा विश्वास है और आश्वासन है। आपका जहां तक। court conduct है it should be ideal. You should impeccable (निर्दोष त्रुटिहीन) dressed. impeccable dressed का मतलब यह नहीं कि आप बहुत मंहगे कपड़े खरीदें आप अपने कोट अपनी बैन्ड अपनी टाई अपने जूते चुस्त दुरस्त रखें साफ सुथरे रखें, क्योंकि यह आपको बड़ी मेहनत से प्राप्त हुए हैं, कई लोग कोट को कुर्सी के पीछे टांग देते हैं तो कुर्सी जज हो जाती है, और जज साधारण आदमी रह जाता है कोट पहनना किसी किस्म की हीन भावना नहीं है, कोट पहनने के लिए काला कोट आपको मिला है, बड़ी मेहनत से, यह तो आपने अर्जित (अर्न) किया है तो आप कुर्सी को इसका क्रेडिट क्यों देना चाहते हैं आप अपने अर्निंग को कोट पहनकर बैठिए मौसम अगर दुराग्रही भी है, तो भी अपनी इज्जत के पीछे अपने को सैक्रीफाइस करना चाहिए, कोट पहनिए, बराबर ड्रेस में आईये, पंच्युल्ऑल्टी बहुत जरूरी है। अपने ऊपर बहुतों का यह आक्षेप लगता है कि हम अदालत में उतना समय नहीं बैठते, जितना समय प्रिसक्राइबड है, निश्चित किया गया है। यह भी अपने आप में एक लांछन है। यह भी एक किस्म की बेईमानी है पाप है। मेरे हिसाब में अगर आप 11 से 5 नहीं बैठते हैं, आप अपनी कर्त्तव्य निष्ठा में चूकते हैं। आपको बराबर 11 बजे न्यायालय कक्ष में उपस्थित होना चाहिए, यह कोई बहाना नहीं है कि चूंकि पक्षकार नहीं आते या वकील साहेबान नहीं आते इसलिए हम 11 बजे नहीं बैठे। हाईकोर्ट ने भी आपको इस बात के लिए बहुत पाबंद कर दिया है कि आप समय पर बैठिए। समय–समय पर इसके बारे में सर्कुलर जारी होते रहते हैं, इन्स्ट्रक्शन्स मिलते रहते हैं, इसके बावजूद पाया जाता है कि जज साहेबान आदतन 12, साढ़े बारह बजे आते हैं, अगर आपके बारे में लोगों का यही ख्याल है, कि आप देरी से आते हैं, तो यह बात उन्हीं तक नहीं रहेगी। यह बात जरूर ऊपर तक पहुंचेगी और दूसरी बात इससे आपको स्वयं ही हीनता महसूस होगी कि आप वह काम नहीं कर रहे हैं, जो आपको करना चाहिए और इसका कोई कारण नहीं कि आप आदत बना लें तो 11 बजे क्यों नहीं बैठ सकते हैं और अगर आप समय पर पहुंच जाते हैं, तो बहुत सारी समस्याएं अपने आप निराकृत हो जाती हैं, बहुत से आक्षेप आप पर लगने ही नहीं पाते बहुत से डाँट फटकार से एवं बहुत सी कठिनाइयों से आपको मुक्ति मिल जाती है और अगर वकील साहेबान नहीं भी आए हैं, तो आप बहुत से केस जो दिन भर के लिए लगे हैं, उनको देख सकते हैं, उनके बारे में अपनी जानकारी बढ़ा सकते हैं जिससे कि जब वह मामला शुरू हो, तो आपका उतना समय बच जाएगा। अगर आपका मुकदमा

पढ़ा हुआ है तथा रिकार्ड देखा हुआ है तो distinct advantage इस बात में है कि आप समय पर बैठें और यह सिर्फ आदत डालने वाली बात है अगर आपने आदत डाल ली है कि हम साढ़े ग्यारह बजे आएंगे या सवा 11 बजे आएंगे या 11 बजे नहीं आएंगे, तो आप 11 बजे नहीं आ पायेंगे सिर्फ आपको मानसिक दृष्टिकोण बनाना है कि हमको समय पर उपस्थित होना है। आजकल तो साढ़े दस बजे उपस्थित होने का है तथा जज़ेज को अब वाहन भी मिलने लगे हैं, तो संभवतः अब इसमें ज्यादा व्यवधान नहीं होता होगा समय पर आने में। समय से उठना भी उतना ही जरूरी है। आप यथा संभव सारा काम निपटाकर फिर बोर्ड से उठें। आप बार–बार चेम्बर में जायें या चेम्बर में बैठकर किन्हीं भी व्यक्तियों से इधर उधर की बातचीत करें, इससे भी कोई लाभ नहीं है। यथा संभव किन्हीं व्यक्तियों को भी चेम्बर में नहीं आने दें। अपने काम से मतलब रखें। 11 से 5 आपका काम खत्म हो गया, आप घर जाइये और अपने परिवार के साथ, समाज के साथ आपके जो सामाजिक कमिटमेंट हों, उनको पूरा करें। पुलिस के साथ भी आपकी अनावश्यक मित्रता या कॉर्डियालिटी नहीं होनी चाहिए, जितना संभव हो, यथा संभव अत्यंत आवश्यक हो तो ही आब्लिगेशन लें, वरना साधारण तौर से न लें। यह एक ऐसी प्रथा है, जिससे हमारे न्यायाधीश बंधुओं को बाद में बहुत कष्ट होता है, कईयों को बहुत कष्ट होता है। सबको होता है ऐसा तो नहीं है, पर ज्यादातर कष्ट के पात्र हम तब बन पाते हैं, जब इस किस्स के छोटे मोटे प्रलोभनों में पड़कर उनसे हम एहसानमंद हो जाते हैं फिर उनकी कोई न कोई गलती या कोई इरेग्युलर या इल्लीगिल बात को आपको पूरी करनी होती है and that leads you to complications and troubles.

बोर्ड डायरी जहां तक हो अपने कंट्रोल में रखें, उसमें जो क्लासीफिकेशन है, जो फिर आपको रूल्स एण्ड ऑर्डर सिविल में मिलेगा, और संभवतः क्रिमिनल में भी मिलेगा, उसके मुताबिक आप डायरी में क्लासिफिकेशन कर लें और उतने ही मुकदमें लगाएं, जितने आपके लिए एक दिन में सुनवाई करना संभव हो। बहुत ज्यादा मुकदमें लगा लिये हैं, या बहुत कम लगा लिये हैं, तो दोनों ही स्थितियों में आपको परेशानी होगी और तीसरी बात यह है कि जो ऑर्डर शीट है, इम्पोर्टेन्ट ऑर्डर शीट खास तौर से वह आप अपने हाथ से लिखने का प्रयास करें, आपका प्रस्तुतकार तो क्रिमिनल साइड का एवं सिविल साइड का है, वह नार्मली आपको अट्रैक्ट करता है कि आप रहने दीजिए यह मैं लिख दूंगा। यह बड़ा प्रलोभन होता है कि जितना भी काम बंट जाय या कम हो जाए, वह ज्यादा अच्छा है। पर that is a trap (नोट – कैसेट को पलटने में लगे समय के कारण कुछ वाक्य अंकित नहीं हुए हैं) तो भी आपका नाम धूमिल होगा, क्योंकि उसको संस्था की उतनी परवाह नहीं है, सभी के बारे में यह बात लागू नहीं होती, कुछ अच्छे आपके, स्टाफ मेम्बर हो सकते हैं, वह बहुत ईमानदार भी हो सकते हैं, बहुत से अपने काम के प्रति निष्ठावान भी होते हैं, पर हम सावधानी बरतें। पर अपना कर्त्तव्य है कि उसके लिए यह मौका ही न रखें, कोई गुंजाइश न छोड़े यह अपने लिए बहुत जरूरी है तो जो ऑर्डरशीट है, वह अपने हाथ से लिखें और बोर्ड डायरी पर अपना कंट्रोल कितना है मतलब आपने अपने काम का सुचारू रूप से उसका कितना वर्गीकरण किया है, उसको कितना बांटा है और कितना काम आप दिन भर में कर सकते हैं और कितना काम लगाते हैं और करते हैं, इस पर आपकी efficiency depend करती है। अच्छे ऑर्डर लिखना, अच्छे जजमेंट लिखना तो आपके लिए जरूरी है ही यह बातें administrative side में परम आवश्यक हैं।

आजकल बहुत बार देखने में आता है कि जो फाइन एमाउन्ट है वह आपका क्रिमिनल रीडर एम्बेझल कर लेता है। instructions के मुताबिक फाइन एमाउन्ट की जिम्मेदारी कोर्ट के प्रिसाइडिंग मजिस्ट्रेट की होती है प्रिसाइडिंग ऑफीसर की होती है यानी तथ्यतः विधि अनुसार आप फाईन एमाउन्ट में और कोर्ट में जो प्रॉपर्टी आती है, जिसको मुद्देमाल कहते हैं, किसी भी दांडिक मामले में जो संपत्ति जमा होती है, उसकी safe custody के लिए आप स्वयं व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार हैं तो इसलिए जब आप फाईन का एमाउन्ट जमा करायें, तो हर दिन चालान और फाईन रजिस्टर ए एवं फाईन रजिस्टर बी की इन्ट्री चेक करना आपके लिए

परम आवश्यक है। वरना नीचे क्या हो रहा है, इसका अंदाज आपको वर्षों तक नहीं लगता। पांच–पांच साल तक बहुत अच्छे मजिस्ट्रेट जज साहेबान को उनके प्रस्तुतकार जो बहुत अच्छे बर्ताव वाले थे, एक तरह से धोखा दे रहे थे और उन जज साहबान को अल्टीमेटली परेशानी का सामना करना पड़ा तो ऐसे घटनाएं अब कुछ बढ़ ही रही है इसलिए आप लोगों को चाहिए कि जो फाइन एमाउन्ट है और मुद्देमाल संपत्ति आये, उसका ध्यान रखे। सिविल कोर्ट डिपाजिट और वाउचर बनाना वगैरा बनाने के संबंध में नियम दिए हैं, डिटेल्स दिए हैं उसके मुताबिक सारी कार्यवाही की जा रही है कि नहीं, नायब नाजिर, नाजिर और आपके प्रस्तुतकार यह लोग उसका पालन कर रहे हैं, या नहीं इसे देखना आपके लिए परम आवश्यक है। अगर रिपेमेन्ट हो जाता है या रिपेमेन्ट रुकता है या डिपाजिट रुकता है, तो भी उसका लांछन उसका ब्लेम आप पर आता है, इसलिए इन बातों को ध्यान रखें और प्रस्तुतकार, अभिभाषक, सरकारी अभिभाषक, पुलिस प्रासिक्यूटर इन पर अवांछनीय विश्वास न रखें।

विश्वास हर व्यक्ति का करना चाहिए लेकिन हर एक आदमी को जांच परख कर एक निश्चित सीमा तक यथा संभव अपने को उनसे एक respectable दूरी बनाकर रखनी चाहिए। अभिभाषकगण से भी अनावश्यक संबंध बढ़ाना उचित नहीं है। वह भी बहुत respectable लोग होते हैं, आप भी उनके respected हैं। आपके सम्मान और उनके सम्मान में कोई clash नहीं है, कोई संघर्ष नहीं है पर उनका क्षेत्र अलग है। आप उस profession, उस व्यवसाय से अभी तक जुड़े थे, अब आप इस तरफ आ गये है, आपको यथासंभव दूरी बनानी होगी ताकि आपकी छवि, आपके नाम पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़े। किसी भी व्यक्ति से हटकर न्यायाधीश का जो पद होता है वह कुछ न कुछ अपने पास sacrifice कुछ न कुछ restraint, self-restraint चाहता है। आपका sacrifice एवं self-restraint यह है कि आपको दूसरे लोगों से अलग हटाकर रखना होगा, आपको अपनी एक परिधि में बांधना होता है, स्वयं को। उसे कोई और नहीं बांधता है एवं स्वयं को उससे बंधना होता है और इसके लिए आवश्यक यह है कि आप किसी से अनावश्यक मेलजोल न बढ़ायें। अदालत और अस्पताल एक ही जगह है, जिनका अगर आज मामला या बीमारी नहीं है, तो कल हो सकती है, और ज्यादातर कुछ न कुछ परेशानी, कुछ न कुछ बीमारी होती ही है, अदालती कार्यवाही भी होती है, और तब उनसे आपको मेल मुलाकात होगी साधारणतः अपेक्षा यही होगी कि आप किसी न किसी रूप में उनको उपकृत्य करेंगे अपनी जान पहचान का बदला वह आपसे प्राप्त करने की कोशिश करेंगे, तो इसलिए बेहतर यही है कि लगातार इतनी दूरी बनाये रखें कि निरपेक्ष भाव से चाहे, उसका मुकदमा है या नहीं, वह हमसे किसी किस्म की स्वतंत्रता, छूट लेने की हिम्मत ही न करे। अपेक्षा भी न करे, तो यह सब बात आपको ध्यान में रखना है। सबसे बड़ी बात यह है कि जैसे मैंने बताया कि आपको अध्यवसाय आपका परिश्रम आपको आगे ले जाएगा, जितनी आप मेहनत करेंगे, उतनी ही आपकी छवि में निखार आएगा, नहीं करेंगे, तो भी आपकी नौकरी बरकरार रहेगी, शासकीय सेवा है लेकिन आप लोगों का नाम आने पर लोग शायद हल्का मुस्कुरायेंगे और वह मुस्कुराहट बहुत साइलेन्स की नहीं होगी, व्यंगात्मक होगी तो आपकी इच्छा है कि आप कौन सा पथ चुनना चाहते हैं, कौन सा रास्ता आप अपनाना चाहते हैं। यह तो आपकी इच्छा पर है। सभी लोग एक ही रास्ते को चुनेंगे, यह अपेक्षा नहीं है। अवसर मुझे मिला है, तो मैं यह चाहूंगा कि आप सब वैसा रास्ता चुनें, जो मैंने पहले बताया कि आपका नाम आते ही यह कहा जाय कि नहीं यह बहुत अच्छे न्यायाधीश हैं, इनके बारे में कोई विवाद नहीं है, अच्छा काम करते हैं, ईमानदार हैं, निष्पक्ष हैं। और बार मेम्बर भी आपके बारे में अपनी धारणा बहुत जल्दी बनाते हैं।

वह एक ऐसा व्यवसाय है जो न केवल आपकी कार्यप्रणाली से आपके चरित्र से बल्कि आपकी पूर्व history से पूर्व इतिहास से भी पूर्ण रूप से परिचित होते हैं, जब आप कहीं स्थानांतरण पर जाते हैं, आपको

पता नहीं चलेगा, लेकिन उसके पहले आपकी ख्याति वहां पहुंच जाएगी तो आप अपनी ख्याति ऐसी बनायें कि लोग कहें कि नहीं हमारे जिले में हमारी तहसील में हमारे स्थान पर ऐसे न्यायाधीश आ रहे हैं जिनके सामने किसी भी किस्म की पराक्रम संभव नहीं होगा, ईमानदारी से वह काम करेंगे और निष्पक्ष रूप से न्याय करेंगे तो इस अपेक्षा के साथ आपका, नामजोशी साहेब का, बहुत बहुत धन्यवाद करता हूं मैं और अपेक्षा करता हूं कि आप सब नामजोशी साहब का नाम ऊँचा करेंगे, आपको डायरेक्टर ऐसे मिले हैं, जो स्वयं में केवल कर्त्तव्यनिष्ठ न्यायाधीश के रूप में जाने जाते हैं, इसका फल मालूम है आपको? इसका फल है, कि 4 साल हो गये, 5 साल हो गये और अगले साल भी इनकी इच्छा पर कि आप जाना चाहते हैं क्या? यह भी दूसरे उदाहरण है, जिनसे पूछा जाता है कि भाई आप रहे, तो कोई परेशानी तो नहीं है और जाना चाहते हैं तो कहां जाना चाहत हैं और नहीं जाओ तो कोई हर्ज है क्या? यह request की जाती है तो स्थान बनाने पर है। यह जो मेहनत करते हैं यह तो जनरल निकालते हैं, जो उसके लिए मटेरियल इकट्ठा करते हैं, इस अपेक्षा से करते हैं कि इनके छोटे भाई आप लोग और हम लोग भी इससे benefit लें इनकी ज्योति जनरल आती है, हम लोग भी देखते हैं कुछ उसमें से हम भी नोटिंग करते हैं और मैं समझता हूं कि हमारे और भी न्यायाधीश करते होंगे। इनने जो मेहनत की है, जो लगन निष्ठा अकेले के दम पर यह Institute चल रही है, बिना किसी व्यय के, बिना खास व्यय के। वह इनको इसकी आवश्यकता नहीं है यह भी आराम कर सकते है 20 पन्ने, 40 पन्ने, 60 पन्ने की जगह 10 पन्ने की ज्योति निकाल सकते हैं। उससे इन्हें कोई अपना व्यक्तिगत स्वार्थ उससे सिद्ध करना है, ऐसा नहीं है, वह आपकी भलाई के लिए हम सबकी भलाई के लिए संस्था की भलाई के लिए काम कर रहे हैं और यह भलाई तभी हो सकती है जिसकी भलाई के लिए यह किया जा रहा है, उसका लाभ उठाए नहीं तो it is a one sided effort if it is not fought not fought it will be futlle, he will be making an effort, but then that effort would not bear fruit unless. पानी देने वाला, पेड़ में सींचता है, लेकिन मौसम अनुरूप न हो अगर पौधा अच्छा नहीं, उसमें घुन लग जाए तो उसके लिए कोई इलाज नहीं है तो आपको चाहिए कि जो मेहनत यह करते है, आपके साथ जो बात बताते है, उसको विशेष ध्यान से सुने, उसको हृदयांगम करें मतलब उसके दिल से महसूस करें, तभी होगा।

यह जो भाषण होता है, जैसे कि मैं भी भाषण दे रहा हूं, भाषण का महत्व तब तक कुछ नहीं है जबकि कि आप इसे महसूस न करें, कि यह बात वाकई में हमको मानना चाहिए, समझनी चाहिए और इसका लाभ लेना चाहिए। भाषण तो बहुत से हो सकते हैं, उसका कोई खास मतलब तब तक नहीं निकलता है, जब तक सुनकर उसका प्रभाव न हो या उसको अपनाने की कोशिश न करें। अगर आपके मन में यह धारणा है कि चूंकि अब हम सर्विस में है, एक respected service में है इसलिए आज से हमारे प्रयासों की हर किस्म से इतिश्री हो गई, तो आपको दुनिया में कोई लाभ किसी के द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता है चाहे नामजोशी साहब हो, आपके डिस्ट्रिक्ट जज साहब हो चाहे इन्सपेक्टिंग जज साहब हो या कोई और हो जब आपके मन में इच्छा होगी कि हमें कुछ सीखना है, आगे बढ़ना है, प्रयास करना है शायद आपके बिना मांगे आपको बहुत सा सहयोग मिलेगा। जो बिना प्रयास के सहयोग मिलता है उसका तो लाभ उठाए। अगर आप प्रयासरत होंगे, तो और जो सहयोग की आप अपेक्षा करेंगे, वह सहयोग भी आपको प्राप्त होगा कई आपके सीनियर होंगे कई आप के डिस्ट्रिक्ट जजेंज होंगे, वह सब आपको गाइड करेंगे, आगे बढ़ने में आपकी मदद करेंगे।

PRACTICE IS THE BEST OF ALL INSTRUCTORS.

HELLO CITATIONIST !

CITATION OF CASE-LAW

Chief Justice (Rtd.) G.D. Khosla

There are many lawyers who seem to think that there is some magical charm in certain combinations of letters and figures and when they have uttered a few formulae like A.I.R. 2050 Bombay 231 or I.L.R. 1742 Calcutta 561, they have done all they need do to win their client's case. They have such complete confidence in the mysterious power of reported cases that **they do not trouble to study the relevant provisions of the statute in question, or to master the fundamental principles of law.** I knew a lawyer of great ability who was possessed of such a retentive memory that he could cite more than a thousand cases without referring to his notes or printed books. He was pestered by young men in the profession who wanted an "open sesame" to unlock the door of their difficulties. They were more anxious to be told the answer to their problems than difficulties. They were more anxious to be told the answer to their problems than Learn a way whereby the solution could be arrived at by their own efforts. This attitude of mind is due in part to the sanctity with which we invest the printed word and to the circumstance that our legal system has been to a large extent influenced by English law and procedure. The English common law is almost entirely based on precedents and a judicial decision has the same importance as the words of a statute. **But even there unintelligent and mechanical citation of cases is deprecated by the judges.** An eminent member of the High Court Bench in England often showed his impatience with lawyers who, instead of relying on well established principles of law or arguing their cases in a logical manner. had a habit of merely displaying a string of authorities. "Tell me what the point is," he would say, "and don't keep on shouting at me Q. B.D. so and so, K.B.D. so and so or I shall be driven to say U.B.D. (you be damned) so and so."

In **India, generally speaking, a judicial pronouncement is valuable only so far as it interprets statute law or some recognized legal principle. A great deal of time and energy would be saved if the particular provision of the statute sought to be invoked or the legal principle relied on is studied and expounded. This line of approach would yield far better results than a blind reliance on reported cases.** It would make for clarity of thought, consistency in argument and avoid the dangers of relying on misleading headlines and faulty decisions.

Not a few erroneous judgments have found their way into the printed Law Reports and they are a frequent source of embarrassment to the Subordinate Courts. There is a Single Bench decision of the Lahore High Court reported in the All India Reporter in which it was held that if a debtor has committed an act of insolvency he must be adjudged insolvent notwithstanding the fact that he is in a position to pay all his debts. I can remember having to cope with this ruling when I was a District Judge in the preparation Punjab and as such bound to follow the dicta of the Lahore High Court. This-judgment so obviously violated the provisions of the statute that no ruling to the contrary could be found. A lawyer who cites a case of this type is not playing the game, for he clearly attempts to mislead the court.

In India an unfortunate practice of citing cases in letters and figures instead of stating the names of the parties has set in. Counsel will say he relies on A.I.R. 1950 Supreme Court 124 or A.I.R. 1950 Supreme Court 27 instead of saying that he wishes to invoke the principle laid down in ***Romesh Thaper v. State of Madras or in A.K. Gopalan v. State of Madras.*** This is not only confusing but makes it more difficult to draw on the storehouse of one's memory. It is far easier to remember names than abstract figures. Law students would be able to retain many more cases in their lessons and realized that real human beings, possessing human names, were concerned in the disputes out of which important legal principles were evolved. Every lawyer knows (or should know) what was held in M'naughton's case or in Woolmington's case, though only a few will react to the abstract formula of letters and figures denoting the particular book and page on which the case is reported. In England cases are nearly always referred to by mentioning the names of the parties, and the more important cases are at once recognized and the point sought to be made is quickly appreciated. If only someone would take the trouble to collect a few hundred civil and criminal cases and publish a few volumes of "Leading Cases" a great deal of confusion and labour would be saved to the legal profession.

The majority of lawyers do not realize that **the importance of a judicial decision lies not only in the legal principle enunciated but also in the peculiar circumstances of the case and the way in which the principle was applied to the facts of that case**. The lawyer when citing a case has to abstract the legal principle in such a way that it will hold good for the facts of the case he is arguing. Some people find this process of abstraction somewhat difficult and fail to appreciate the significance of the real point involved. Let me illustrate this by taking a concrete instance, say the decision of the House of Lords is ***Woolmington v. The Director of Public Prosecutions (1935) Appeal Cases 462).*** It is not enough to say that this case is an authority for the rule that in a trial for murder the Crown must prove death as the result of a voluntary act of the prisoner and malice of the prisoner, for this principle was well established even before the pronouncement of the House of Lords. It was, however, further laid down that when evidence of death and malice had been given, the prisoner is entitled to show by evidence or by examination of the circumstances adduced by the Crown that the act on his part which caused death was either unintentional or provoked. What was really laid down in this case was that the onus of proving the guilt of the prisoner remains on the shoulders of the prosecution until the end :

The facts of the case were somewhat unusual, indeed starting and recital of the circumstances in which Mr. Woolmington met her death clarifies and strenthen's the argument. The appellant woolmington was charged with the murder of his wife who died as the result of a gunshot wound inflicted by a gun in his possession. Relations between husband and wife had become strained and Mrs. Woolmingtion left her husband and went to live with her mother. She refused to return to the appellant in spite of his efforts to induce her to go back. Woolmington went to the house of his mother-in-law carrying a gun concealed under his overcoat. He had previously sawed off part of the barrels to shorten the length of the gun in order to facilitate the concealment of the weapon upon his person.

Both barrels of the gun were loaded. The evidence of a neighbour was to the effect that she had heard the appellant's voice saying : "Are you coming back or not?" Then a door was heard to bang followed by the report of a gun. The appellant then was seen leaving the house and riding away on a bicycle.

It was held on proved that the death of Mrs. Woolmingtion had followed upon the explosion of a gun which was in her husband's hand at the time. Woolmington's defence was that he intended to frighten his wife into obedience by threatening to shoot himself. When his wife refused to return to him he showed her the gun which went off accidently. When he went home he told his mother that he had been up and shot his wife. He then told his employer to whom the gun belonged. " I shall not be coming to work 'any more, as I have shot my wife." When he was arrested a note in his hand was found on his person. The contents of the note were very damaging to him. Yet the House of Lords held that the prosecution had not ruled out the hypothesis of an accidental explosion of the gun.

It is unnecessary to go into further details of this case and I have given it merely as an illustration of the importance of stating the facts of the case when citing a ruling. To the layman the evidence against Woolmingtion would appear overwhelming. indeed a jury of twelve did in fact find him guilty.

It is not very helpful to cite a large number of cases in order to support an elementary and well-recognized principle of law. A few well chosen cases intelligently cited will prove of far greater assistance than a larger number which have only a remote bearing on the case in hand.

Courtesy :- 1. Hon'ble Justice Shri G.D. Khosla former chief Justice PNJ H.C.
2. Bar Council of India New Delhi.

●

संशोधन

ज्योति जनरल माह अप्रेल 2001 में कुछ मुख्य त्रुटियां अक्षर संयोजन की हुई हैं उन्हें कृपया सुधार लें।

- पृष्ठ 71 पर द्वितीय पंक्ति में **हमारा** स्थान पर **हमारे** एवं **तथ्य** के स्थान पर **लक्ष्य** पढ़ें।
- पृष्ठ 71 पर बारहवीं पंक्ति में **हतकंडे** के स्थान पर **हथकंडे** पढ़ें।
- पृष्ठ 90 समापन में **प्रथम पूर्ण विराम** का लोप करें।
- पृष्ठ क्र. 111 पर शीर्षक में **APPERANCE** के स्थान पर **APPEARANCE** पढ़ें।
- पृष्ठ 126 पर मनोगत के दूसरे चरण में **उत्तर** के स्थान पर **उत्तम** पढें।
- पृष्ठ 129 पर **बेहतर है जान लीजिए** में **अंत में लिखें शेष पृष्ठ 144 पर** पढ़ें।
- पृष्ठ 144 पर **बेहतर है जान लीजिए** में **समानांतर में लिखें पृष्ठ 129 से आगे** पढ़ें।

POWER-OF-ATTORNEY

P.V. NAMJOSHI

INTRODUCTION

The word "Power-of-Attorney" may not be synonymous with the words "Agent, Authority, delegate, representative, Proxy Holder or Surrogate" and like nature. They are also not antonymous as such. The simple meaning of 'Power-of-Attorney' is an authorisation of one person to another person to do some act or series of acts on behalf of another. However, this is a vague definition of the word Power of Attorney. When we speak in strict sense and we refer to the Powers-of-Attorney Act, 1882 which came into force on 24th February, 1882. This Act has 6 sections. The last section is a repealed clause. Definition has been given in Section 1-A of the said Act which defines as under:

"In this Act the power of attorney includes any instrument empowering a specified person to act for and in the name of the person executing it." Thus it is an Authority whereby one is said in turn, stead or place another to act for him. ***Ramdeo Vs. Lalu*** **AIR 1937 Nag 65.** The term is also defined by Indian Stamp Act. Section 2 (21) of the Indian Stamp Act defines Power of Attorney which includes any instrument (not chargeable) with a fee under the law relating to court fees for the time being in force) empower a specific person to act for and in the name of the person executing it. Virtually a power of attorney holder is a representative in vague language. The dictionary meaning of "Representative" is to act or speak officially for someone or somebody or to act as a substitute for somebody. The word "Proxy" means a person who is given the authority to act on behalf of another. The term "Representative" is used in different Acts in different manner. It has several meanings. But here the simple meaning would be to represent someone else who has authorised him to act on his behalf. A Government employee who is not in a position to receive his salary may authorise another employee or other person to receive salary on his behalf. But this does not mean that he is a holder of power of Attorney. What he does is just a single act. Another example may be if I depute a person to deposit electricity or telephone bill on my behalf, he is working for me as an agent but not in strict sense under the Contract Act, though he is acting on my behalf. "Agent" has also been defined under Section 182 as a person employed to do any act for another or to represent another in dealings with third person. Again "sub agent" has been defined in Section 191 of the Contract Act. A sub-agent is a person employed by, and acting under the control of the original agent in the business of agency.

The power of Attorney is an authority given by formal instrument whereby one person, who is called the donor or principal, authorises any person, who is called the donee Attorney or agent to act on his behalf. Virtually, the Law relating to power-of-Attorney is a branch of the Law of Agency.

The dictionary meaning of Attorney has been explained by P. Ramnath Iyyer in his dictionary Law Lexicon as, "An ancient English word, and signifieth one that is set in the turn stead or place of another." In its broadest sense, an attorney is one put in place of

another; one acting for another; an agent; but, when not coupled with any qualifying expression, the word is usually construed as meaning attorney at law, i.e. appointed by another man to do anything in his absence. He may be either public in the Courts and made by a warrant from his client; or private, upon occasion for any particular business, who is commonly made by letter of attorney or power of attorney. Except for purpose of liability to some duty, Vakaltnama is power of attorney and is effective for any purpose, for which power of attorney is required in law. ***Ramdeo Vs. Lalu*** **AIR 1937 Nag. 65.**

INDIAN PARTNERSHIP ACT

Section 19 of the Indian Partnership Act says that subject to the provisions of Section 22, the Act of a partner which is done to carry on in the usual way business of the kind carried on by the firm binds the firm. The authority of a partner to bind the firm conferred by Section 19 of the Indian Partnership Act is called implied authority. Sub-Clause (2) of Section 19 says that in the absence of any usage or custom of the trade to the contrary, the implied atuhority of a partner does not empower him to :-

a) submit a dispute relating to the business of the firm of arbitration.

b) open a banking account on behalf of the firm in his own name,

c) compromise or relinquish any claim or portion of a claim by the firm,

d) withdraw a suit or proceeding filed on behalf of the firm,

e) admit any liability in a suit or proceeding against the firm,

f) acquire immovable property on behalf of the firm,

g) transfer immovable property belonging to the firm, or

h) enter into partnership on behalf of the firm.

Thus if the firm intends to confer any of the powers to a particular partner, though there is no usage or custom to the contrary, the above "A to H" conditions/ would need a power of attorney from all the partners of the firm in his favour specifying the authority conferred. If there is an implied authority, in order to bind the firm, the act done within the implied authority must be such as-

(1) is done in the conduct of the business of the kind carried on by the firm;

(2) is done in the usual way, business of the firm; and

(3) it is further necessary that the act must be done in the firm name or in any other manner expressing or implying an intention to bind the firm.

Since it is a branch of agency it is covered by Contract Act also. In the Contract Act one has power to appoint an attorney. But however, Section 5 of the Powers-of-Attorney Act says that a married woman of full age shall, by virtue of this Act, have powers, as if she were unmarried, by non-testamentary instrument, to appoint an Attorney on her behalf, for the purposes of executing any non testamentary instrument or doing any other act which she might herself execute or do; and the provisions of this Act relating to instruments creating powers- of-attorney shall apply thereto. In **AIR 1933 Mad 407 (409, 410),** it is said

that by virtue of provisions of section 5 of the Powers-of-Attorney Act, 1882 a married woman even though a minor, can appoint an attorney to do any act on her behalf and the revision of an application by way of an appeal to the Registrar by an attorney so appointed is not invalid. The **AIR Manual 5th Edition (1981) in its Vol. 39 at page 346** comments on the Law Commission's Report. In para 5 of the Law Commission's Report what is said is, "Section 5 of the Act as at present worded gives the impression that the marriage of a minor which is prohibited by the Child Marriage Restraints Act, is permitted and that a married woman who is a minor could execut a power of attorney. Therefore, it is proposed to delete the reference to a married woman who is a minor so as to make it clear that a minor, whether married or unmarried does not have the power to appoint an agent or execute a power of attorney. Thus the authority of **AIR 1933 Mad 407** is not relevant now because the words "a married woman, whether a minor or not shall by virtue of this Act have power, as if she were unmarried and of full age" were substituted and new section was incorporated by Act No. 55 of 1982.

PROOF OF EXECUTION OF POWER OF ATTORNEY :-

If we go through section 33 of the Indian Registration Act or Section 85 of the Evidence Act, it will reveal that Section 33 (4) says that any power of Attorney mentioned in this section may be proved by the production of it without further proof **when it purports on the face of it to have been executed before and authenticated** by the person or court. What is important is the document should be **executed before** and **authenticated** before the competent Authority. A Magistrate who **merely attest** thumb impression of a person it will not be presumed that it is a valid power of Attorney.

Again Section 85 of the Evidence Act says that "the Court shall presume that every document purporting to be a power of attorney and to have **executed before** and **authenticated by** a notary public or any court, Judge, Magistrate, Indian Consul or vis consul or representative of the Central Government was sought **executed** and **authenticated".** Thus if it is proved that it was properly executed and authenticated before a Court or a person authorised to do so, it will be proper proof of execution and authorisation of power of Attorney.

EFFECT OF AUTHORITY

Section 2 of the power of Attorney Act says about the effect of authorising a person to do different acts. **The object of S. 2 is :-** The object of S. 2 is to effectuate instruments executed by an agent but not in accordance with the rule of common law and the enactment is more procedural than substantive. It does not confer on a person a right to act through agents. It presupposes that the agent has the authority to act on behalf of the principal and protects act done by him in exercise of that authority but in his own name. But where the question is as to the existence of the validity of authority, the section has no application. Section 2 merely states the general principle of agency and it cannot override specific provisions of a rule made under a different statute which require that a particular act shall be done by a person personally.

POWER OF ATTORNEY EXECUTED IN FAVOUR OF BANK AGENT :-

Where a Bank by a power of attorney authorised its agent to sign any agreements, generally sign for Bank and take any legal proceedings on behalf of Bank, it was held that the agent had authority to enter into a reference to arbitration. **AIR 1941 Pesh 3 (5) (DB) and 1984 Delhi 363.** A reference can be made to a case of ***United Bank of India Vs. Naresh Kumar, AIR 1997 SC 3*** in which reference of O 29. R. 1 is also made. **AIR 1986 P & H 214 and 1977 Cal 55.**

PERSON OBJECTING THE VALIDITY THAT THE POWER OF ATTORNEY WAS NOT PROPERLY EXECUTED :-

In **AIR 1981 Delhi 222,** it was said that there is a presumption of valid execution and authentication of power of attorney which is duly authenticated as power of attorney which is duly authenticated before notary. In **1971 SC 761 (764, 765)** it was said that Section 85 of the Evidence Act applies equally to documents authenticated by notary public of other countries. In that case vendor use to reside in U.S.A. First power of attorney was not duly authenticated. Second power of attorney duly authenticated and noticing first being defective and same being ratified. Second power validates transactions and registration even though both being earlier to second power. Such ratification relates back to date of act done and agent is put in same position as if he had authority to do it at that date. Please see section 8 of Notaries Act and 53 of 1952 Act. No particular form of authentication by notary public is given under section 35. Attestation by Notary public stating, "subscribed and sworn to before me" is valid authentication. In **AIR 1979 Bom 202 (205),** Authentication of power of attorney must be clear, specific and decisive. To authenticate a thumb impression on power of attorney Magistrate used rubber stamp and put signature on the basis of identification made by Advocate, presumption as to authentication under Section 85 of Evidence Act should not have been drawn. In **AIR 1936 All 475 (476) (DB)** what happened was the husband of Parda Nashin woman purporting to act under special power of attroney from his wife filed an application for leave to sue as a pauper on her behalf but the power of attorney was not verified by the Magistrate or certain other officers, though there may be no presumption under Section 85 of the Evidence Act. But it does not follow that there is an opposite presumption that it had not been duly executed by the applicant. This is a question of fact and is subject to proof. Therefore, as per **AIR 1924 Mad 880 (882) and AIR 1970 Manipur 57 (63),** it was held that statements in power of attorney should require to be proved like any other statements.

REGISTRATION :-

If we go through sections 32 and 33 of the Registration Act it can be safely said that registration is not compulsory.

IDENTITY :-

In **(1906) 33 Cal 625 (629) (FB),** it was held that the authentication by Notary public of a document purporting to be a power of Attorney and to have been executed before him is to be treated as the equivalent of the affidavit of identity. The object of the Section 85 of the Evidence Act is to avoid the necessity of identity.

REVOCATION OF POWER OF ATTORNEY

Unless expressly or impliedly limited for a particular period, a general power of attorney continues in force until expressly revoked or determined by death of either party. A special power to do an act is determined when the act is done. If it is desired that the power should be continued for a particular period or until certin thing happens, an express provision to that effect should be made. (Mogha's Indian Conveyancing)

Section 3 of the Act does no more than indemnify the holder of a power of attorney for actions done by him in good faith if the determination of his power by the death of a person granting it was unknown to him, at the time. **AIR 1934 Nag 274 (276).**

A power of attorney is in general revokable in its nature; but where a power is part of a security for a debt, it is irrevocable until the debt is repaid notwithstanding the death of the debtor. (***Abbort Vs. Strawten,* 3 JO & L 60**)

The power of attorney once utilised would not terminate or cease in relation to future acts which are only consequences to the previous acts, already done. **(1992) 2 Bombay L.R. 254 (257).**

What is important is by authorising a person to hold a power of attorney does not mean that he becomes a spokesman on behalf of a donor. That is why one cannot be authorised to hold a power of attorney on one's behalf. This does not mean that a person who holds a power of attorney on behalf of a donor does not remain a competent witness as such. He cannot steps into the shoes of the donor but he can be a competent witness, and can depose what he knows personally or what he came to know from other sources.

SEVERAL ATTORNEYS AND ONE ATTORNEY FOR SEVERAL PURPOSES :-

If several persons are appointed, it is desirable to provide whether they are to act jointly or severally for in the absence of express provisions authorising them to act severally, they will be entitled only to act jointly. In **AIR 1979 SC 553** (***Sayyad Abdul Vs. Ramireddy,*** it was held that three principals can directly join one agent. (Also refer to sections 182, 183, 186 and 188 of Contract Act).

WHO CAN BE APPOINTED AS POWER OF ATTORNEY :-

Section 5 of the Powers-of-Attorney Act does not authorises a married woman, if she is a minor, to appoint a power of attorney holder. A power of attorney executed by a person while of unsound mind is nullity, any transaction purported to be done under power is also a nullity. Section 184 of the Contract Act says that as between principal and third person any person may become an agent but no person who is not of age of majority and of sound mind can become an agent so as to be responsible to his principal according to the provisions in that behalf.

CONSIDERATION :-

No consideration is necessary to create an agency. This is what section 185 of the Contract Act says. There is another provision in contract Act under which there need not be consideration. That provision is Section 127 which says that anything done or any

Promise made for the benefit of principal debtor, may be a sufficient consideration to the surety for giving the guarantee. Thus money consideration is not a matter. Again Section 25 of the Contract Act expresses that, though agreement made without consideration is void but if it is made on account of natural love and affection between the parties, if it is a promise to compensate for something done for the promisor or if it is a promise to pay time barred debt.

KINDS OF POWERS OF ATTORNEY :- (TO TYPES)

A general power of attorney is the power extended to do a class of business or employment. A special power of attorney is one where the power is restricted to the doing the necessary acts in the accomplishment of one particular purpose.

There are two kinds of powers of Attorney. One is general power of attorney by which authority is given to act for the principal in all matters or in matters of particular nature or concerning particular business. Special Power of Attorney is one by which authority is given to do some particular specified act.

POWERS OF ATTORNEY FOR THE PURPOSES OF CROSS-EXAMINATION :-

In ***T. Hannudeo Raghvi Vs. Baldeo Raghvi, 1 MPSC 454 = 1942 NLJ 449,*** it is said that cross-examination of witnesses is "acting" and "pleading". In specific cases, an expert under special power of attorney can be allowed to be employed for the cross-examination of an expert in the same line of business on the other side. Please refer to ***1997 Joti Journal at page 25 Tit Bit 16.***

COMPETENCY AS WITNESS :-

In ***Ram Prasad Vs. Hari a Narayan, AIR 1998 Raj 185,*** it is no where said that the person holding power of attorney is not a competent witness. What is said is he cannot be substituted for a party to the proceedings. That is he cannot depose for and on behalf of a person for whom he is holding a power of attorney. He will be a competent witness provided his case is covered by section 118 of the Evidence Act. Please see **1998 Joti Journal December Titbit 55 page 67** ***Virendra Vs. Ram Katori Devi and Samsuddin Vs. Jagdish, 2001 (1) JLJ 39.***

In AIR 1993 All 143 (154) it is said that a holder of power of attorney cannot give evidence on behalf of his principal. But this does not mean that he himself is not competent to testify.

DEPOSIT OF POWER OF AUTHORITY IN COURT :-

Section 4 of the Act authorises to deposit the original instruments creating powers of attorney in High Court or District Court as the case may be. A certified copy of an instrument so deposited shall, without further proof, be sufficient evidence of the contents of the instrument and the deposit thereof in the High Court or District Court.

STAMP DUTY

The stamp duty required for executing general power of attorney and special power of attorney are mentioned in Sch. IA Art. 48 of the Indian Stamp Act (M.P. Amendment).

THE MEANING OF THE WORDS "AUTHENTICATED" AND "ATTESTED"

The word "attested" has the same meaning as defined in Section 3 of the T.P. Act. "To attest" is to bear witness to a fact and it is not necessary that the witness attesting a document should sign his name. The attestation means the act of witnessing the signature of an instrument and subscribing the name of the witness in testimony of such facts. The certification by the keeper of a record of a variety of a copy. Again "attestation" means that what is said to be attested happened in the presence of attesting witness.

"Authentication" is uncountable noun, "authenticate" is adjective, and "authenticity" is also uncountable noun "Authenticity" means the quality of doing authentic, the quality of acceptence as authoritative, genuine, true or correct. It also means doing what it purports to be. Authentic documents means a document executed with all due formalities, executed by a proper person and legally attested before the proper authorities.

The Powrs of Attorney Act, Section 85 of Evidence Act, Sections 32 and 33 of the Registration Act are reproduced for ready reference.

Photocopy of Rules 73 and 74 of the M.P. Registration Rules, 1939 and proforman No. 8 under Rule 73 and Section 27 of the Negotiable Instruments Act are enclosed herewith for ready reference.

POWER OF ATTORNEY ACT AND CRIMINAL PROCEDURE CODE

The question is whether an accused can be represented by an Attorney is being answered by the Supreme Court in ***P.C. Mathai Vs. Distirct & Sessions Judge. Thiruvananthapuram, Kerala, (1999) 3 SCC 614.*** It was held as under :-

When the Criminal Procedure Code requires the appearance of an accused in a a Court it is no compliance with it if a power-of-attorney holder appears for him. It is a different thing that a party can be permitted to appear through counsel. Chapter XVI of the Code empowers the Magistrate to issue summons or warrants for the appearance of the accused. Section 205 of the Code empowers the Magistrate to dispense with "the personal attendance of the accused, and permit him to appear by his pleader" if he sees reasons to do so. Section 273 of the Code speaks of the powers of the Court to record evidence in the presence of the pleader of the accused, in cases when personal attendance of the accused is dispensed with. But in no case can the appearance of the accused be made throught a power-of-attorney hloder.

The observations made in ***M. Krishnammal Vs. Balasubramania Pillai, AIR 1937 Mad 937*** though stated sixty years ago, would represent the correct legal poistion even now. Thus an agent cannot become a "pleader" for the party in cirminal roceddings unless the party secures permission from the court to appoint him to act in such proceedings.

NOTE : Please refer to **1999 JOTI JOURNAL October issue, Tit-Bit 56 at page 420.**

Judicial officers are requested to go through AIR Commentaries and Mogha on Law of Conveyancing.

●

TEXT OF
THE POWERS-OF-ATTORNEY ACT, 1882

1. Short title- This Act may be called the Powers-of-Attorney Act, 1882.

Local extent- It applies to the whole of India except the State of Jammu and Kashmir;

Commencement- and it shall come into force on the first day of May, 1882.

1A. Definition- In this Act, "Power-of- Attorney" includes any instruments empowering a specified person to act for and in the name of the person executing it.

2. Execution under power-of attorney- The donee of a power-of-attorney may, if he thinks fit, execute or do any instrument or thing in and with his own name and signature, and own seal, where sealing is required, by the authority of the doner of the power; and every instrument and thing so executed and done, shall be as effectual in law as if it had been executed or done by the donee of the power in the name, and with the signature and, seal, of the donor thereof.

This section applies to Powers-of-Attorney created by instruments executed either before or after the Act comes into force.

3. Payment by attorney under power, without notice of death, etc., good-Any person making or doing any payment or act in good faith, in pursuance of a power-of-attorney, shall not be liable in respect of the payment or act by reason that, before the payment or act, the donor of the power had died or become of unsound mind, or insolvent, or had revoked the power, if the fact of death, unsoundness of mind, insolvency or revocation w s not, at the time of the payment or act known to the person making or doing the same.

But this section shall not affect any right against the payee of any person interested in any money so paid; and that person shall have the like remedy against the payee as he would have had against payer, if the payment had not been made by him.

This section applies only to payments and acts made or done after this Act comes into force.

4. Deposit of original instruments, creating, powers-of-attorney- (a) An instrument creating a power of-attorney, its execution being verified by affidavit, statutory declaration or other sufficient evidence may, with the affidavit or declaration,if any, be deposited in the High Court or District Court within the local limits of whose jurisdiction the instrument may be.

(b) A separate file of instruments so deposited shall be kept; and any person may search that file and inspect every instrument so deposited, and a certified copy thereof shall be delivered out to him on request.

(c) A copy of an instrument so deposited may be presented at the office and may be stamped or marked as a certified copy, and, when so stamped or marked, shall become and be a certified copy.

(d) A certified copy of an instrument so deposited shall, without further proof, be sufficient evidence of the contents of the instrument and of the deposit thereof in the High Court or Distric Court.

(e) The High Court may, from time to time, make rules for the purposes of this section, and prescribing, with the concurrence of the State Government, the fees to be taken under clauses (a), (b) and (c)

(g) This section applies to instruments creating Powers-of-Attorney executed either before or after this Act come into force.

5. Power-of-attorney of married women- A married woman of full age shall, by virtue of this Act, have power, as if she were unmarried,) by a non-testamentary instrument, to appoint an attorney on her behalf, for the purpose of executing any non-testamentary instrument or doing any other act which she might herself execute or do; and the provisions of this Act, relating to instruments creating powers-of-attorney, shall apply thereto.

This section applies only to instruments executed after this Act comes into force.

6. *•Act XXVIII of, 1866, section 39 repealed) Repealed by the Amending Act, 1891 •12 of 1891), section 2 and Schedule.*

NOTE :- Extended to Dadra and Nagar Haveli by the Dadra and Nagar Haveli (Laws) Regulation, 1963 (6 of 1963) section 2 and Schedule I and to Pondicherry by the Pondicherry (Extension of Laws) Act, 1968 (26 of 1968).

S.85 EVIDENCE ACT

85. Presumption as to powers-of-attorney. The Court shall presume that every document purporting to be a power-of-attorney, and to have been executed before, and authenticated by, a Notary Public, or any Court, Judge, Magistrate, Indian Consul or Vice-Consul, or representative of the Central Government was so executed and authenticated.

THE REGISTRATION ACT

PART IV

Of presenting documents for registration

32. Persons to present documents for registration. Except in the cases mentioned in (sections 31, 88 and 89), every document to be registered under this Act, whether such registration be compulsory or optional, shall be presented at the proper registration-office.

(a) by some person executing or claiming under the same, or, in the case of a copy of a decree or order, claiming under the decree or order, or

(b) by the representative or assign of such person, or

(c) by the agent of such person, representative or assign. duty authotised by power-of-attorney executed and authenticated in manner hereinafter.

33. Power-of-attorney recognizable for purposes of section 32. (1) For the purposes of section 32, the following powers-of-attorney shall alone be recognized, namely :-

(a) if the principal at the time of executing the power-of-attorney resides in any part of India in which this Act is for the time being in force, a power-of-attorney executed before and authenticated by the Registrar or Sub-Registrar within whose district or sub-district the principal resides;

(b) if the principal at the time aforesaid (resides in any part of India in which this Act is not in force), a power-of-attorney executed before and authenticated by any Magistrate;

(c) if the principal at the time aforesaid does not reside in India a power-of-attorney executed before and authenticated by a Notary Public, or any Court, JJudge, Magistrate, Indian Consul or Vice-Consul, or representative of the Central Government :

Provided that the following persons shall not be required to attend at any registration-office or Court for the purpose of executing any such power-of-attorney as is mentioned in clauses (a) and (b) of this section, namely :-

(i) persons who by reason of bodily infirmity are unable without risk or serious inconvenience so to attend;

(ii) persons who are in Jail under civil or criminal process; and

(iii) persons exempted by law from personal appearance in Court.

Explanation- In this sub-section "India" means India, as defined in clause (28) of section 3 of the General Clauses Act, 1897 (10 of 1897).

(2) In the case of every such person, the Registrar or Sub-Registrar or Magistrate, as the case may be, if satisfied that the power-of-attorney has been voluntarily executed by the person purporting to be the principal, may attest the same without requiring his personal attendance at the office or Court aforesaid.

(3) To obtain evidence as to voluntary nature of the execution, the Registrar or Sub-Registrar or Magistrate may either himself go to the house of the person purporting to be the principal, or to the Jail in which he is confined, and examine him, or issue a commission for his examination.

(4) Any power-of-attorney mentioned in this section may be proved by the production of it without further proof when if purports on the face of it to have been executed before and authenticated by the person or Court herein-before mentioned in that behalf.

FORM NO. 8

(Rule 73)

Endorsement on power-of-attorney authenticated
(section 33 of the Act)

(a) When executant appears before the registering officer and signs the Power-of-Attorney in his presence, whether at the registration office or at a private residence.

Executed in my presence (at the house of ..... at mauza.....), on this ..... day of ..... 20..... by ..... son of ..... caste ..... occupation ..... resident of ..... tahsil ..... district ..... who is personally known to me (or whose identity was established by the evidence ..... son of ..... caste ..... occupation ..... resident of ..... tahsil ..... district ..... and ..... son of ..... caste ..... occupation ..... resident of ..... tahsil ..... district ..... (if oath was administered here write that they were examined on oath, and that their statements were entered in the minute book; vide rule .....). I authenticate it under section 33 of the Indian Registration Act, 1908, and record it as serial No ..... for 20 ..... on this ..... day of ..... 20.....

....

Signature and addition of the principal (if literate) or his thumb mark (if illiterate).

Signature and official title of the Registering officer.

(b) When executant is examined on visit and does not appear freely before the registering officer.

Having visited and examined the principal (name and addition) at his (or her residence) at ....., I am satisfied that this Power-of-Attorney has been voluantarily executed by him (or her) and I accordingly authenticate it under section 33 of "The Indian Registration Act, 1908" and record it as serial No ..... for 20 ..... on this ..... day of ..... 20 .....

Note,- The manner in which the identity of the principal was proved should be explained as in Form No. 8 (a).

....

Signature or thumb mark as in Form 8 (a).

Signature and official title of the Registering officer.

(c) When executant is examined by Commission

From the report made by (name and addition), who was appointed Commissioner to enquire into the voluntary execution of the power-of-Attorney. I am satisfied that it has been voluntarily executed by the said (name only) and I accordingly authenticate it under section 33 of "The Indian Registration Act, 1908" and record it as serial No ..... for 20 ..... on this ..... day of ..... 20 .....

.....

Signature and official title of the Registering officer.

●

AUTHENTICATION OF POWERS-OF-ATTORNEY:-

R. 73: ENDORSEMENT :- Endorsement of authentication of power-of-attorney made under section 33 of the Act, shall be made by the registering officer himself in Forms 8 (a), (b) and (c) of Appendix A.

R. 74 : POWERS TO BE AUTHENTICATED : A power-of-attorney conferring on an attorney or agent (along with other powers) the power to act for the principal under the Act shall be authenticated by the registering officer-vide section 33 of the Act.

S. 27 NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT 1881

27. Agency- Every person capable of binding himself or of being bound, as mentioned in Sec. 26, may so bind himself or be bound by a duly authorized agent acting in his name.

A general authority to transact business and to receive and discharge debts does not confer upon an agent the power of accepting or indorsing bills-of-exchange so as to bind his principal.

An authority to draw bills of exchange does not of itself import an authority to indorse.

●

लगाम हाथ में चाबुक साथ में

पुरूषोत्तम विष्णु नामजोशी

उपोद्घात

एक व्यवहार न्यायाधीश ने सहज भाव से प्रश्न पूछा कि व्यवहार प्रकरणों पर किस प्रकार नियंत्रण रखा जाना चाहिए। इसका उत्तर क्या दिया जावे। घोड़े पर किस प्रकार नियंत्रण रखा जा सकता है? उत्तर है लगाम थामने से। लेकिन ये उत्तर तब सही होगा जब लगाम थामने वाला ऐसी क्षमता रखता हो। लगााम तो घोड़े की डाली जा चुकी होगी जब उस पर सवार सवारी करेगा। प्रकरण न्यायालय में प्रस्तुत हुआ उस पर नियंत्रण आपका है। आप उसे किस प्रकार गति देते हो यही महत्वपूर्ण बात है। विचारण न्यायालय एवं अन्य न्यायालयों के बीच मुख्य अंतर ही यह है कि विचारण न्यायालयों में लगभग 80 से 90 प्रतिशत कार्य प्रक्रिया संबंधी कार्य होता है व सारवान विधि का काम तो औसत रूप से प्रकरण के गुणदोष पर निर्णय देते समय ही पड़ता है। अतः यदि फाईल पर नियंत्रण है तो अधिकांश समस्याएं आसानी से हल हो सकती हैं। प्रक्रिया संबंधी मुख्य विधियां हैं व्यवहार प्रक्रिया संहिता एवं दंड प्रक्रिया संहिता। साक्ष्य अधिनियम का उपयोग वाद प्रश्न बनाते समय व साक्ष लिपिबद्ध करते समय आता है। मर्यादा अधिनियम का उपयोग भी हमेशा करना ही पड़ता है इसके अतिरिक्त फिस्कल लॉज अर्थात कोर्ट फीस स्टॉम्प एक्ट एवं रजिस्ट्रेशन एक्ट की धारा 17–18 एवं 49 का विशेषकर उपयोग होता है। कोर्ट फीस अधिनियम का पूरक विषय सूट वेल्यूएशन एक्ट भी होता है। यदि इन विषय पर अच्छे से पकड़ हो, मास्टरी हो, कमांड हो तो समझ लीजिए कि आपका नियंत्रण प्रकरण पर 90 प्रतिशत की सीमा तक निश्चित है।

आप अधिवक्तागणों को आवेदन पत्र प्रस्तुत करने से रोक नहीं सकते। उचित अनुचित आवेदन पत्र तो अनादिकाल से प्रस्तुत होते रहे हैं और ऐसे आवेदन पत्र प्रस्तुति का भविष्य भी उज्जवल है। आपकी क्षमता पर निर्भर करेगा कि अधिवक्तागण को किस सीमा तक ऐसा करने से आप रोक सकेंगे। यदि आप स्वयं ही विधि के प्रति अनभिज्ञ हों अथवा कि अस्पष्ट हों अथवा भ्रमित हो तो आपका फाईल पर कोई भी नियंत्रण नहीं रहेगा व सतत् रूप से आवेदन पत्र प्रस्तुत होते रहेंगे।

अंदाज से कार्य

व्य.प्र.स. एवं दं.प्र.स. का पारायण युक्त अध्ययन करना निरर्थक होगा यदि हम यथा समय उसका उपयोग नहीं करेंगे। यथा वाद प्रश्न बनाना है। हम झट से वाद प्रश्न बना देते हैं। वास्तव में इस विषय पर हमारा अध्ययन आ. 14 एवं रूल्स एण्ड ऑडर्स सिव्हिल का गहराई से तो क्या सरसरी रूप से भी नहीं होता। अतिश्योक्ति न हो तो यह भी कहा जा सकता है कि उक्त प्रावधानों को ठीक से पढ़ा भी नहीं जाता है। टिप्पणी युक्त पुस्तक भी नहीं देखते। वाद प्रश्न बनाते वक्त हमें उन विधि प्रावधानों का भी ज्ञान होना चाहिए जिस विधि के आधार से सहायता चाही गई है। यथा प्रोनोट पर से दावा हो तो हमें धारा 80, धारा 118 परक्राम्य विलेख अधिनियम का भी ज्ञान होना चाहिये। प्रोनोट के आधार पर से यदि एक दावा स्मॉल कॉज कोर्ट का हो तो हमें व्य.प्र.स., म.प्र. व्यवहार न्यायालय अधिनियम, स्टॉम्प एक्ट, स्मॉल कॉज कोर्ट एक्ट, कोर्ट फीस एक्ट, लिमिटेशन एक्ट, साहूकारी अधिनियम आदि का ज्ञान नहीं है तो ऐसे छोटे से दावे में भी कार्य करना कठिन होगा। अतः हमें फाईल पर नियंत्रण रखने हेतु आवश्यक है कि संबंधी प्रकरण से सुसंगत सभी विधियों का ज्ञान। ऐसा ज्ञान तब मजबूत होगा जब हम किसी प्रकरण में जो कार्यवाही करना चाहते हैं उस बाबत् संबंधित

प्रावधान पढ़ लिये हों। अतः सबसे पहली बात ये है कि हम कोई भी कार्यवाही जैसे पंचकर्म किसी भी प्रकरण में अंदाज से नहीं करेंगे एवं हम बार–बार उन विषयों को आवश्यकता अनुसार देखते रहेंगे।

ज्ञान को व्यवहार में लाना

विधि संबंधी ज्ञान होना ही पर्याप्त नहीं होगा उसका मनोनियोग से (application of mind) विधि की प्रयुक्ति (Application of Law) हो। अर्थात ज्ञान को व्यवहारिक बनाना भी अत्यंत आवश्यक है। ज्ञान को व्यवहार में लाने हेतु विधि प्रावधानों को बारीकी से समझना होगा। ऐसा तब होगा जब उन प्रावधानों के संबंध में अच्छी पुस्तक में से भाष्य पढ़ा जावे। किसी एक पुस्तक का भाष्य मात्र भी समय के साथ अनुभव के साथ कम पड़ेगा। लेकिन आवश्यक है भाष्य का पढ़ा जाना। ऐसा इसलिए आवश्यक है कि किसी एक की बात को विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न दृष्टिकोण से किस प्रकार देखा जाता है। न्याय दृष्टांतों के विषय में यह एक महत्वपूर्ण पहलू है।

विधि प्रावधानों का खोजना

विधि प्रावधानों को खोजना एक कला है। सबसे आसान मार्ग है अच्छा सा मोटा सा, मजबूत अच्छे कागजों का रजिस्टर रखना। ये आपकी सेवा तक काम देगा। कभी धोखा नहीं देगा। प्रारंभिक न्यायालयों में बार–बार उपयोग में आने वाले अधिनियम मुश्किल से 15–20 से अधिक नहीं होते। विधि पत्रिकाएं पढ़ते समय हमने उन न्याय दृष्टांतों की नोंद संक्षेप में रजिस्टर में कर लेना चाहिए। विषय वार खंड करके रजिस्टर में उसकी नोंद पर्याप्त मात्रा में समय की बचत करने में आपको सहायक होगी। इसके अतिरिक्त आप किसी भी डायजेस्ट से भी मदद ले सकते हैं। उन डायजेस्ट में जो विषय वर्णानुक्रम में दर्शाए होते हैं उन्हें एक बार अवश्य देख लें। जैसे एफिडेविट, एकाउन्ट, बेनामी व्यवहार, सिविल प्रेक्टिस, सिविल प्रिसिडेन्टस् क्रिमिनल प्रेक्टिस, क्रिमिनल ट्रायल लीगल मॅग्झिमस्, वर्डस् ॲण्ड फेजेस, ऐसे कई शीर्षक हैं जिसमें ऐसे ऐसे दृष्टांत मिलते हैं जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। क्रिमिनल ट्रायल, क्रिमिनल प्रेक्टिस, सिविल प्रेक्टिस पर अच्छी पुस्तकें मिलती है कभी वो भी खरीद लेना वे पुस्तकें समुद्र में जहाज के लिए दीप स्तंभ जैसी सिद्ध होंगी। वे दृष्टांत अत्यंत उपयोगी होते हैं। नया दृष्टिकोण प्रदान करते हैं, नया सोच विकसित होता है। इन दृष्टांतों को समझने का सबसे आसान मार्ग है जब फुरसत के क्षण हों (घंटो की बात नहीं कहता हूं) या अपने वालों से ही टेन्शन हो तब इन पुस्तकों के पन्ने पलटते रहना व कहीं का भी कुछ भी पढ़ना। कुछ देर ऐसा करते करते आप को स्वयं को रूचि जागृत हो जाएगी व आप सिलसिलेवार देंखना शुरू कर देंगे। कोशिश करो सफलता की गैरंटी। शुअर सक्सेस।

प्रस्तुतीकरण

आपके पास उपरोक्त सभी सकारात्म पहलू (प्लस पॉइन्टस्) होने पर भी आपका आदेश यदि व्यवस्थित नहीं है तो क्या लाभ। संपन्न किसान के पास कृषि हेतु सभी सुविधाएं होने पर भी यदि जमीन पर हल बक्खर नहीं चलाएगा तो उसे पैदावार कहां से मिलेगी; ठीक से चारा तक उत्पन्न नहीं हो पाएगा। किसी भी आवेदन पत्र पर आदेश लिखना एक सृजनात्मक क्रिया है। इस विषय पर अभी–अभी पूर्व लेखों में भी बताया है। संक्षेप में यह बताना उचित है कि आदेश लिखते समय प्रथम चरण में उस आवेदन पत्र क्रमांक का उल्लेख व आवेदन पत्र की धारा का स्पष्ट खुलासा, आवेदन पत्र के विषय के संदर्भ के साथ हो। दूसरा व तीसरा चरण अति संक्षेप में वादी–प्रतिवादी का क्या प्रकरण है इस विषय का हो। चौथा चरण आवेदन पत्र की विषय वस्तु हो। पांचवा चरण विपक्षी का विरोध, उक्त आवेदन पत्र पर किस आधार से है ये स्पष्ट हो। फिर विचारणीय बिंदु एवं आपके द्वारा समीक्षात्मक रूप से सारगर्भित चिंतन विषय से संबंधित सभी प्रावधानों को देखकर हो कि आवेदक क्या सहायता चाहता है तथा आपके विचार तथ्यात्मक–विधि स्वरूप के लिखे जावें। ऐसा करते हुए आदेश पारित

करें। संभवतः पढ़ने वाले को समग्र रूप से विषय वस्तु का ज्ञान हो जाएगा। इस संबंध में एक लेख **"समुचित विशिष्ठियां क्यों व कैसे"** उदाहरण सहित **ज्योति 1998 अगस्त पृष्ठ 11** पर लिखा है पुनः पढ़ें स्पष्ट हो जाएगा। एक अन्य लेख **'अस्थायी निषेधाज्ञा' ज्योति 1999 दिसंबर पृष्ठ 471** पर भी देखें।

इस प्रकार आदेश देने से सभी को सुविधा से आपके आदेश का मूल्यांकन करने में सुविधा होगी। ये बात भिन्न होगी कि आपके द्वारा दिये कारण वरिष्ठ न्यायालय को स्वीकार हो या न हो लेकिन कोई यह नहीं कह सकेगा कि बिना लगाम के घोड़ा चला रहा है।

और ये छोटी सी अपेक्षा

प्रकरण का नियंत्रण हाथ में रखने हेतु हमें कुछ बातें नियत समय पर करना भी तो आवश्यक है। जैसे दावा प्रस्तुत होने पर **वास्तविक रूप से** उसका चेकिंग करना है। (लेख **'वादों का संस्थित किया जाना' दिसंबर 2000 ज्योति पृष्ठ 675**)। निर्धारित तिथि पर आदेश/वाद प्रश्न/ चार्ज/ आरोपी कथन/ एवं निर्णय का कार्य निश्चित रूप से करना। (इस संबंध में कई लेख लिखे हैं) **'वाद प्रश्नों को ठीक से निर्मित करना'** (देखें **ज्योति 1998 अप्रेल भाग, पृष्ठ 57**) **आरोपों का विरचित करना (1998 एप्रिल भाग, पृष्ठ 13 से आगे आरोपों के प्रारूप सहित) 'प्रक्रिया विधि संबंधी विवरण ज्योति अक्टूबर 1998 पृष्ठ 8, 'व्यवहार न्यायालयों में कार्यपद्धति एक व्यवहारिक पहलू' ज्योति 1998 दिसंबर अंक पृष्ठ 5** आदि लेखों को भी देख लें। एक अन्य बात साक्ष्य निर्धारण की तिथि। यह तिथि आ. 16 नि. 1 व्य.प्र.स. के अनुसार 15 दिन से अधिक की नहीं होगी। क्या यह अनुचित नहीं है कि हम दो–दो साल तक वाद प्रश्न न बनाएं एवं सेटलिंग डेट की तिथि भी दो–दो साल तक बढ़ाते रहें। ये दोष और किसी का नहीं हमारा अपना है। अतः इन बातों का विशेष रूप से ध्यान रखना है।

समापन

हमारे आदेश का मूल्यांकन जब वरिष्ठ न्यायालय करेगा तो उसे विषयवस्तु सहित आपके द्वारा पारित आदेश के कारण भी स्पष्टतः समझ में आ जाएंगे व अनावश्यक रूप से प्रकरण रिमांड होने से बच जाएगा। (रिमांड विषय पर पृथक से लेख लिखा जा रहा है।) आप कह सकते हैं कि यदि इतना सब करेंगे तो हम काम क्या करेंगे। वाह भाई, वाह। आपकी आपत्ति सव्यय निरस्त करने योग्य है। ऐसा नहीं है। प्रारंभिक रूप से इस प्रकार की तैयारी करने में प्रतिदिन मुश्किल से आधा घंटा लग सकता है लेकिन एक बार गाड़ी लाईन पर आ गई तो फिर क्या कहने है। फर्राटे से दौड़ेगी। किसी परिश्रम की आवश्यकता ही नहीं होगी। बस! आदत में शुमार होते ही सब काम आसानी से बिना प्रयास के प्रभावी रूप से होगा। फलदार वृक्ष की एक बार देख रेख ठीक से कर लो तो सम्पूर्ण सीजन में शानदार फसल प्राप्त होगी जो प्रारंभिक देखरेख के लिए लगने वाले समय एवं लागत की तुलना में जो प्राप्ति होगी वह आशा से बहुत ज्यादा होगी। आपके परिश्रम का प्रत्युत्तर वृक्ष बढ़चढ़ कर देखा। याद रखना तंग करने, परेशान करने वाली कार्यवाही हेतु, विचारण (फेयर ट्रायल) पर प्रतिकूल, प्रभाव डालने हेतु अथवा उलझन, विलंब करित करने हेतु अथवा दुर्भावना पूर्वक कार्यवाही हेतु जो आवेदन पत्र प्रस्तुत होते हैं उनका निराकरण करते समय धारा 35, 35ए एवं धारा 35बी व्य.प्र.स. के आवश्यक प्रावधान भूलने से काम नहीं चलेगा। वह चाबुक है घोड़े को ठीक से चलाने हेतु। विश्वास करो परिणाम जन्य अवसर आपकी राह देख रहे हैं। तो चले! शुरू हो जाए, इसको भी आजमा लें।

●

SOW A **THOUGHT** AND YOU REAP AN **ACT;**
SOW AN **ACT** YOU REAP A **HABIT;**
SOW A **HABIT** YOU REAP A **CHARACTER;**
SOW A **CHARACTER** AND YOU REAP A **DESTINY**

धारा 25 परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881

पुरुषोत्तम विष्णु नामजोशी

धारा 25 परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 जिसे अंग्रेजी में Negotiable Instruments Act, 1881 कहा जाता है का संबंध प्रत्यक्षतः हमें नहीं आता है; लेकिन समाचार पत्रों में इस धारा का उल्लेख करके राज्य केन्द्र सरकार द्वारा अवकाश घोषित करने का समाचार अवश्य पढ़ते हैं। तत्पश्चात जो याद रहता है वह यह कि अब किस तारीख का अवकाश घोषित किया है। बहुत बार सोचते हैं कि ये धारा होती क्या है जिसके अंतर्गत भी अवकाश घोषित किया जाता है। सोचते जरूर हैं लेकिन विचारते नहीं हैं। अभी 1 एवं 2 अप्रैल को रविवार एवं रामनवमी का सार्वजनिक अवकाश है व बैंक आदि के लिए वार्षिक लेखा बंदी हेतु बैंकों को दि. 3 का अवकाश है। लेकिन राज्य शासन ने आज ही उक्त धारा के अंतर्गत घोषणा की कि अब लेखा बंदी 1 अप्रैल को होगी व 3 अप्रैल कार्य दिवस होगा। मन में प्रसन्नता हुई कि वेतन मिल जाएगा। इस प्रसन्नता से अभिप्रेरित हो कर सोचा कि इस धारा पर भी एक संक्षिप्त टीप लिख दी जावे। मैं स्वयं ऐसा ही करता रहा हूँ कि धारा 25 क्या है बाद में देखेंगे अभी तो अवकाश घोषित हुआ है मजा करो। मजा तो करते ही रहेंगे लेकिन कुछ चिंतन भी हो जाए।

धारा 25 अंग्रेजी में इस प्रकार है–

25- WHEN DAY OF MATURITY IS A HOLIDAY

When the day on which a promissory note or bill of exchange is at maturity is a public holiday, the instrument shall be deemed to be due on the **next preceeding business day.**

Explanation : The expression 'public holiday' includes sundays and any other day declared by the Central Government, by notification in the official Gazette, to be a public holiday.

हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है–

25. जबकि परिपक्वता का दिन लोक अवकाश दिन है- जबकि वह दिन, जिसको कोई वचन पत्र या विनिमय पत्र परिपक्व हो जाएगा लोक अवकाश दिन हो तब लिखत **निकटतम पूर्व कारोबार वाले दिन** शोध्य समझी–जाएगी।

स्पष्टीकरण - "लोक अवकाश दिन" पद के अन्तर्गत रविवार आता है और ऐसा कोई भी अन्य दिन, आता है जिसे केन्द्रीय सरकार ने शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा लोक अवकाश दिन घोषित किया है।

उपरोक्त धारा में महत्वपूर्ण शब्द है– Public holiday (लोक अवकाश दिन), Next preceeding (निकटतम पूर्व), business day (कारोबार वाला दिन)।

लोक अवकाश दिन में रविवार भी सम्मिलित होगा यह बात स्पष्टीकरण के रूप में उक्त धारा में जोड़ी गई है। अर्थात यदि कोई वचन पत्र या विनिमय पत्र उस अवकाश के दिन परिपक्व हो जाता है तो उस दिन के निकटतम पूर्व कारबार वाले दिन शोध्य माना जावेगा। यदि एक विनिमय पत्र रविवार को शोध्य होता है तो शनिवार को शोध्य माना जावेगा व शनिवार को भी यदि लोक अवकाश है तो शुक्रवार को शोध्य माना जाएगा।

यह प्रावधान धारा 10 जनरल क्लाजेस एक्ट के ठीक विपरीत दिशा का होने का आभास मिलता है ऐसी ही बात धारा 4 मर्यादा अधिनियम के विषय में भी कही जा सकती है। उक्त धाराओं में यह प्रावधान है कि जो कार्य जिस दिन किया जाना है व जिसके लिए मर्यादा काल निर्धारित है वह कार्य अगले कार्य दिवस (next working day) पर किया जा सकता है।

कार्य दिवस की परिभाषा **व्यंकट रमैय्या के लॉ लॅक्सिकन** में इस प्रकार बताई है –

Working day means the part of a day during which work is carried on. Therefore, to find the working day, one must find what are the customory or ordinary hours worked either at a particular place or in a particular trade. Half day working of the mills should be, counted as full day for the purposes of computation of period.

कारोबार वाला दिन को इसी दृष्टिकोण से लिया जावे तो इसका अर्थ होगा जहां पर वचनपत्र या शोध्य पत्र परिपक्व होने पर दर्शित करना है उस स्थान (क्षेत्र) में कारबार का दिन कब है, अथवा नहीं है इस पर निर्भर करेगा। यदि बैंक शनिवार को आधे दिन का कारोबार करती है तो वह कारोबार का दिन ही कहलाएगा। अथवा जहां कारोबार शाम के समय होता है वहां कारोबार का दिन तब कहलाएगा। यह बात भी मर्यादा अधिनियम की धारा 4 के ठीक विपरीत लगती है। उसके स्पष्टीकरण में कहा है कि न्यायालय इस धारा के अर्थ के भीतर, उस दिन बंद समझा जाएगा जिस दिन वह अपने काम के नियमित काल के किसी भी भाग में बंद रहे। तब न्यायालय पुनः जब कार्य के लिए खुलेगा (Re-open) तब कार्यवाहियाँ प्रस्तुत की जा सकती है। धारा 25 में कारोबार दिन (Business day) का प्रयोग इसलिए हुआ कि वचनपत्र अथवा विनिमय पत्र का संदर्भ व्यापारिक लेन–देन के क्षेत्र में होता है तथा बैंक एवं कोषालय का कार्यक्षेत्र भी व्यापारिक लेन–देन से संबंधित होता है इसीलिए कोषालयों के अवकाश के लिए भी आवश्यकतानुसार संदर्भ धारा 25 परक्राम्य लिखत अधिनियम का आता रहता है।

अवकाश (Holiday) भी परिभाषित किया जा सकता है। अवकाश दिन वह दिन है जिस दिन सम्पूर्ण कार्य गदिवस या उसके किसी नियमित काल के किसी भी भाग में कार्य निष्पादन निलंबित होता है। ऐसा निलंबन विधिक निलंबन होगा। लेकिन उक्त परिभाषा के आधार से व्यापार कारबार के रूप में ऐसा निर्वचन किसी भी भाग में कार्य निष्पादन निलंबन से नहीं हो सकेगा। क्योंकि धारा 25 का लाभ हो तब ही मिलेगा जब व्यापार के सामान्य कारोबार के अंतराल में पूर्ण अवकाश घोषित किया है। अतः जब व्यापार कारोबार किसी दिन कुछ ही घंटों के लिए होना हो तब यदि शेष अवधि के लिए जिस के लिए कार्य निलंबित किया हो लेकिन कार्य निलंबन के लिए धारा 25 का सहारा लिया हो तब ऐसा विचार हो सकता है। लेकिन धारा 25 का लाभ तब नहीं मिलेगा जब उस रोज कार्य होना है चाहे कुछ समय के लिए ही होता है व धारा 25 का नोटिफिकेशन न हो धारा 25 परक्राम्य लिखत अधिनियम में Due अर्थात देय शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ Payable भी है।

अब प्रश्न यह शेष रह जाता है कि यदि वचनपत्र अथवा विनिमय पत्र के संबंध में धारा 25 परक्राम्य लिखत अधिनियम. के प्रावधान लागू हो व कोई रकम ऐसे विलेखों के आधार पर देय हो तो उक्त स्थिति में मर्यादा काल क्या होगा। जैसे कोई रकम वचन पत्र या विनिमय पत्र दिनांक 02 अप्रेल 2001 को देय हो व उस दिन लोक अवकाश हो तब वह 01 अप्रैल 2001 को देय होगा। उस दिन भी लोक अवकाश है तो वह 31 मार्च 2001 को देय होगा इस विषय पर चिंतन के लिए पराक्रम लिखत अधिनियम की धारा 22 को देखें जिसमें परिपक्वता एवं अनुग्रह दिवस को बताया है। साथ ही इसी अधिनियम की धारा 23,24, 30 91 से 98 देखना होगा जहां वचनपत्र अथवा विनिमय पत्र का अनादर होता है के विषय में बताया है। मर्यादा अधिनियम की धारा 12, 15 अनुच्छेद 21 तथा अनुच्छेद 31 से 40 तक को भी देखना होगा। यह चिंतन विस्तार लिए होगा जो यहां संभव नहीं है, पृथक लेख का विषय हो सकता है। लेकिन धारा 30 परक्राम्य लिखत अधिनियम इस विषय को अधिक सुस्पष्ट करती है। इस लेख का मुख्य उद्देश्य धारा 25 क्या है। यह बताने का था।

●

रिमांड (प्रतिप्रेषण) द्धारा प्रकरणों का निपटारा

पुरुषोत्तम विष्णु नामजोशी

यह लेख रिमांड के सिद्धांतों को प्रतिपादित करने के लिए नहीं है ना ही यह बताने का प्रयास है कि विश्लेषणात्मक रूप से उसकी प्रस्तुति क्या हो सकती है। इस लेख द्वारा यह बताने का प्रयास मात्र है कि अपील कोर्ट के रूप में हम किस मानसिकता से कार्य करते हैं। म.प्र. न्यायिक सेवा में एक लोकोक्ति कई दशकों से प्रचलित है। अपील कोर्ट के विषय में कहा जाता है कि कुछ न्यायाधीश **बहालीराम** होते हैं तो कुछ **पलटूराम** तो कुछ **रिमांडीराम**। जब तक अपीलेट कोर्ट में अंग्रेजी में निर्णय आदि लिखने का प्रचलन था तब एक लोकोक्ति और चलती थी वो ये कि यदि अधीनस्थ न्यायाधीश ने निर्णय अंग्रेजी में लिखा है तो अपील न्यायालय वही बात हिन्दी में लिख देगी व यदि विचारण न्यायालय ने निर्णय हिन्दी में लिखा है तो अपील कोर्ट अंग्रेजी में लिख देगी। चूंकि अंग्रेजी का प्रचलन लगभग समाप्त हो गया है तो हर कोई अपनी अपनी बोल–चाल की भाषा में काम करता है।

रिमांड के संबंधी में आ. 41 नि. 23 से 26ए तक तथा नि. 28–29 एवं आ. 41 नि. 27 के अंतर्गत अतिरिक्त साक्ष्य आदि के महत्वपूर्ण प्रावधान है। न्यायालय का विवेक है कि उसका प्रयोग करे। न्यायिक विवेक की अपेक्षा की जाती है न कि मनःपुतम् समाचरेत की।

अनुभव ये आता है कि तुच्छ बातों पर से भी रिमांड का आदेश दिया जाता है जबकि प्रकरण को रिमांड करने के अधिकार अत्यंत सीमित है। कभी–कभी तो यह भी अनुभव हो सकता है कि रिमांड की कार्यवाही न्यायालय द्वारा स्वप्रेरणा से प्रायोजित तो नहीं कराई है।

आ. 41 नि. 23 एवं 23 क के अंतर्गत रिमांड की सीमा किसी प्रारंभिक बिंदु (केवल प्रारंभिक वाद प्रश्न मात्र नहीं) पर विचारण न्यायालय ने प्रकरण निराकृत कर दिया है तो अपील न्यायालय उस बिंदु को अपीलार्थी के पक्ष में निर्णित करती है तो शेष विषयों पर निर्णय हेतु प्रकरण रिमांड किया जा सकता है। लेकिन आ. 41 नि. 24 एवं 25 का विस्तार तो और भी अधिक सीमित, संकुचित है। उक्त प्रावधानों के साथ नि. 26–28–29 के अंतर्गत कार्यवाही हो सकती है। अपील न्यायालय सीमित विषय पर साक्ष्य लिपिबद्ध करने हेतु विचारण न्यायालय को निर्देशित कर सकती है व निष्कर्ष विचारण न्यायालय से आहूत कर अपील का निराकरण करा सकती है। यही बात आ. 41 नि. 27 के प्रावधानों के अंतर्गत भी हो सकती है। अपील न्यायालय को भी साक्ष लेने का अधिकार है। लेकिन हम यह सोचते हैं कि एक पन्ने आदेश लिखकर अपील का निराकरण करो व फुर्सत पा लो। यूनिट मिल जाते हैं तथा दिखाने को व बताने को यह कि हमने ढेर सारी अपीलें निराकृत की है। कमाल तो तब होता है कि धारा 125 दं.प्र.स. के कार्यवाही के अंतर्गत अंतरिम भरण पोषण भत्ते के आवेदन पत्र पर पारित आदेश के विरूद्ध रिवीजन में भी रिमांड हो जाता है या कि अस्थायी निषेधाज्ञा के आवेदन पत्र पर पारित आदेश के विरूद्ध रिमांड हो जाता है। कभी–कभी यह भी प्रतीत होता है कि अधिवक्ता गण भी ऐसे आदेशों के विरुद्ध वरिष्ठ न्यायालय में कार्यवाही नहीं करते। अभी कुछ दिन पूर्व में सुनने को मिला कि निष्कासन के एक प्रकरण में अपील हुई, उसमें संशोधन आवेदन पत्र प्रस्तुत हुआ जो स्वीकार कर रिमांड किया गया। उच्च न्यायालय में रिमांड आदेश को चुनौती नहीं दी गई अपितु संशोधन स्वीकार करने के मुद्दे को मात्र चुनौती दी गई।

ऐसा नहीं है कि प्रकरणों का रिमांड करना ही नहीं चाहिये। कभी–कभी औचित्य पूर्ण आधारों से रिमांड किया जा सकता है। लेकिन यदि कार्य अभिमुख (वर्क ओरिएन्टेड) के बजाय यूनिट अभिमुख (यूनिट ओरिएन्टेड) लक्ष्य के साथ कार्य किया जाता है तो बहुत कठिनाई होती है। प्रथम बात तो ये कि तुच्छ कारणों से रिमांड पर फाईल विचारण न्यायालय को भेजी गई। 15-20 साल पुरानी फाईल पुराने नंबर पर पंजीकृत हुई। यदि आ. 41 नि. 26 ए के अंतर्गत पक्षकारों को विचारण न्यायालय में उपस्थित होने का निर्देश न हो तो विचारण न्यायालय की स्थिति और भी खराब। पक्षकारों को आहूत करने की प्रक्रिया शुरू करना। उसी में सालों निकल जाते हैं। (इस विषय पर पृथक से लेख लिखा है) ऐसा करने से अपिलेट कोर्ट को क्या सॅटिसफेक्शन (संतोष) मिला? केवल यह भ्रम कि उसने अपील को निपटा दिया; ये तो कमजोर मन का लक्षण है। जहां ऐसी छबि कुछ न्यायाधीशों की बनने लगती है तब उनकी योग्यता पर भी प्रश्न चिन्ह लगने की संभावना बढ़ जाती है कि क्या ये अपील/रिवीजन कोर्ट के रूप में निर्णय/आदेश लिखने में सक्षम है भी या नहीं। दूसरा संतोष मिलता है कि दो चार यूनिट्स खाते में बढ़ गए। दो चार यूनिट्स के खातिर पक्षकारों का इतना भारी नुकसान। फिर क्या हमें यह भी मालूम है कि धारा 13 कोर्ट फीस अधिनियम के अंतर्गत अपीलार्थी को कोर्ट फीस लौटाने के क्या प्रावधान हैं।

हम अपने रिमांड आदेश को पढ़कर औचित्य सिद्ध कर लेंगे लेकिन हमारा स्वभाव ये है कि यदि हमें अन्य न्यायालय का ऐसा ही आदेश पढ़ने को मिला तो हमारी प्रतिक्रिया ये होगी कि वो न्यायाधीश तो ठीक से काम भी नहीं करता न उसे आता है और जैसे तैसे डिस्पोजल करके यूनिट्स ले लेता है।

अपराधिक रिवीजन, विविध अपीलों में भी यदि हम ऐसा ही करेंगे तो स्थिति भयंकर हो सकती है।

अपेक्षा यह हो सकती है कि हम रिमांड संबंधी प्रावधानों को कॉमेंट्री सहित अच्छे से पढ़ लें। **ज्योति जनरल एप्रिल 2001 में पृष्ठ 88** पर विशेष रूप से खुलासा किया है कि पायलेट प्रोजेक्ट असफल होने में यह स्थिति भी जिम्मेदार हो सकती है।

बंधुओं न्यायिक विवेक का उपयोग साम्या, न्याय एवं शुद्ध अन्तःकरण से करें अन्यथा भविष्य में रिमांड के संबंध में मिलने वाले यूनिट्स भी कहीं समाप्त न हो जावे।

●

MEMORANDUM NO A/4549/ III-1-46/58- IV JABALPUR 18th NOV. 2000. ISSUED BY THE HIGH COURT OF M.P. TO ALL THE DISTRICT JUDGES.

Subject : Regarding deducting the period of strike by the Advocates from prescribed 220 working days.

On the subject mentioned above, I am directed to inform you that Judicial Officers may make mention of period of strike by Advocates in the work-done statement which shall be taken in to consideration by the District Judge concerned as well as by the Registry.

●

THE ACTIONS OF MEN ARE THE BEST INTERPRETERS OF THEIR THOUGHTS

प्रक्रिया विधि - पालन में उपेक्षा न हो

(दंड विधि संहिता)

पुरूषोत्तम विष्णु नामजोशी

प्रस्तावना

ज्योति जनरल एप्रिल 2001 के पृष्ठ 91 पर व्यवहार विधि के विषय में एक लेख संक्षिप्त में लिखा था। दंड विधि संहिता के संबंध में भी विचारों का प्रस्तुतिकरण उचित प्रतीत होता है। जैसा कि विदित है प्रक्रिया विधि की-विशेषता है कि उसे कठोरता पूर्वक पालन करना होता है। यदि प्रक्रिया में कोई त्रुटि रह जाती है तो अभियुक्त को अनुचित रूप से लाभ मिल जाता है व दूसरे पक्ष के साथ न्यायालय के कारण प्रक्रियात्मक अन्याय हो जाता है जो अपूर्णनीय भी हो सकता है।

आरोप पत्र की प्रस्तुति :-

आरोप पत्र की प्रस्तुति के साथ किसी आपराधिक प्रकरण में कार्यवाही प्रारंभ होती है। प्रायवेट परिवाद भी प्रकरण में कार्यवाही हेतु प्रस्तुत होता है उस विषय पर चर्चा दूसरे शीर्षक में करेंगे।

आरोप पत्र प्रस्तुत होने पर न्यायालय को उसका पंजीयन करने विषयक आदेश दिया जाना होता है ताकि रीडर आवश्यक पंजी में उसका पंजीयन कर सके। आरोप पत्र प्रस्तुत होने पर रीडर आदेशिका लिखकर आपके सामने प्रस्तुत करेगा तो आप हस्ताक्षर कर देंगे। सिद्धांत कुछ भी हो व्यवहार में ऐसा ही होता है। संभवतः गलत न भी हो। हमें कम से कम यह करना है कि रीडर को एक आदर्श आदेशिका का नमूना बनाकर देना चाहिये जिससे वो उस अनुरूप चेकिंग करके फिर प्रारूप अनुसार आदेशिका लिख देगा। आरोप पत्र (चालान) चार्जशीट प्रस्तुत होने पर देखेंगे कि पुलिस द्वारा उल्लेखित समस्त विलेख उपलब्ध हैं या नहीं। मुद्दे माल प्रस्तुत हो रहा है या नहीं। विलेखों आदि में यदि कोई त्रुटि हो तो उसका भी खुलासा होना चाहिये। आदेशिका में आरक्षी केन्द्र का नाम अपराध क्रमांक अभियुक्त गणों के नाम अपराध की धारा का खुलासा हो। आरोप पर डी.पी.ओ. या ए. डी.ओ.पी. की ओर से प्रस्तुत होना चाहिये यद्यपि यह भी व्यवहारिक सत्य है कि एक कांस्टेबल आकर प्रस्तुत कर देता हैं ए.डी.ओ. पी. आदि हमारे लिये इतना ही पर्याप्त है। अति तकनीकी रूप से हमें ऐसे मामलों में दखल नहीं देना चाहिये।

विलेखों को चेक करते समय ध्यान रहे कि आरोप पत्र में वर्णनानुसार विलेख हो। दूसरी बात यह कि उन विलेखों में कुछ कम जादा हो तो उसकी टीप भी हो। जैसे पंचनामे जप्ति, नक्शा, मेमोरंडम कथन, मृत्युपूर्व कथन आदि चेक करें। कुछ एक में गवाहों के हस्ताक्षर नहीं हों तो किसी में कुछ तो किसी में और कुछ नहीं होता है उसका खुलासा आदेशिका में हो। जिन साक्षियों के कथन प्रस्तुत करना कहा जाता है व लगे हैं या नहीं यह देख लें। अर्थात आरोप पत्रानुसार क्रास चेकिंग कर ले। आप कुछ दिनों तक सतत् रूप से स्वयं करें एवं रीडर को बताते जावें ताकि भविष्य में रीडर आपकी अपेक्षा अनुरूप कार्य करेगा जो गुणवत्ता पूर्ण होगा।

हमारा काम यह भी है कि आरोप पत्र मर्यादा काल में प्रस्तुत हुआ है या नहीं यह देखें। धारा 167 (5) एवं (6) की ओर भी हमारा ध्यान होना चाहिये जो स्टॉपिंग ऑफ इन्व्हेस्टिगेशन के संबंध में है।

जहां तक मुद्देमाल जमा कराने का प्रश्न है चौकस दृष्टि रखें। जो मुद्देमाल सील होना है वह आपके सामने हो। जो मुद्देमाल वैसे भी या सील करके भेजना हो उसका प्रपत्र भरवा लें, पुलिस द्वारा प्रस्तुत पर्चा भी उसके साथ लगवा दें क्योंकि उस पर्चे के प्रतिपर्त पर रीडर प्राप्ति के हस्ताक्षर करता है। कभी भी भूल से भी

मद्देमाल को रीडर के माध्यम के सिवाय नाज़िर को माल जमा करने हेतु पुलिस को निर्देशित न करें गबन की बहुत ज्यादा संभावनाएं होती हैं। एक लेख **माननीय न्यायाधिपति श्रीमान आर.बी. दीक्षित महोदय** ने लिखा था उसे भी अवश्य पढ़ ले। (**ज्योति जनरल अप्रेल 1999 पृष्ठ 88**)

परिवाद पत्र

परिवाद पत्र तीन प्रकार के होते है। प्रथम वह जो सर्वसाधारण द्वारा प्रस्तुत होता है, दूसरा लोक सेवक द्वारा व तीसरा वो जो पुलिस द्वारा अनुसंधान करने के पश्चात अ संज्ञेय अपराध में प्रस्तुत होता है। तीनों की प्रक्रियाओं भिन्नता है। प्रक्रिया संबंधी उल्लेख धारा 2 डी में एवं पाठ 15 एवं 16 में धारा 200 से 210 के बीच मिलेगा। उक्त प्रावधानों के आधार से ही स्वयंमेव एक बड़ा लेख लिखा जा सकता है। यहां आपका ध्यान एक दृष्टांत ***(2001) 2 एस.सी.सी. पृष्ठ 628 सुरेश जैन वि. स्टेट*** की ओर तथा धारा 156 से 159 की ओर भी आकृष्ट किया जाता है।

मजिस्ट्रेट द्वारा स्वयम् सज्ञान

एक अन्य प्रकार प्रकरण को न्यायालय के रिकार्ड पर लेने का है वह है स्वयम् सज्ञान द्वारा। इस विषय में ध्यान धारा 190 एवं धारा 191 दं.प्र.सं. की ओर आकृष्ट किया जाता है। कृपया उन प्रावधानों को देख ले समझ लें।

दोषारोप आदि लगाना

चार प्रकार की ट्रायल्स होती हैं। (1) समरी (2) समन्स (3) वारण्ट (4) सेशन्स। चारों में प्रक्रिया भिन्न भिन्न है। समरी ट्रायल में धारा 260 अनुरूप समरी ट्रायल में ट्रायल शीट पर ही अपराध की विशिष्टियाँ लिखी जाती हैं। यहीं बात समन्स ट्रायल में है जो धारा 251 के अंतर्गत है वारण्ट ट्रायल में धारा 240 दं.प्र.स. के अनुसार चार्ज लगाया जाता है तो सत्र न्यायालय में प्रकरण मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 209 दं.प्र.स. के अंतर्गत कमिट किया जाता है व सत्र न्यायालय को तब धारा 193 के प्रावधानों के अनुरूप अधिकारिता प्राप्त होती है। सत्र न्यायालय धारा 228, 229 के अनुरूप कार्यवाही करता है व चार्ज लगाता है।

लोक सेवक एवं सर्व साधारण द्वारा प्रस्तुत परिवादों में प्रक्रिया अलग होती है जो समन्स ट्रायल एवं वारण्ट ट्रायल मे दर्शाई गई है। (कुछ जानकारी आगे 'चार्ज कैसे लगाना' के अंतर्गत दी है।) समरी केसेस में धारा 260 (2) के अंतर्गत समरी ट्रायल की प्रक्रिया को वारण्ट या समन्स ट्रायल की प्रक्रिया में बदला जा सकता है व धारा 259 के अंतर्गत समन्स ट्रायल की प्रक्रिया को वारण्ट ट्रायल की प्रक्रिया में बदला जा सकता है। ध्यान रहे सत्र न्यायालय द्वारा यदि प्रकरण धारा 228 (1) (ए) के अंतर्गत प्रकरण वापस आता है व मॅजिस्ट्रेट द्वारा सुनवाई होना हो तो तब भी वारण्ट ट्रायल से ही सुनवाई होगी। यथा धारा 307 भा.द.वि के अंतर्गत प्रकरण सत्र न्यायालय को उपार्पित हुआ। सत्र न्यायालय ने पाया कि अपराध धारा 352 या 323 के अंतर्गत बनता है, तथा यद्यपि ऐसा अपराध अन्यथा समरी या समन्स केस के रूप में सुनवाई योग्य है लेकिन कमिटल पूर्व से व कमिटल के पश्चात भी चूंकि वारण्ट ट्रायल की प्रक्रिया प्रारंभ की थी अतः विस्तार युक्त सुनवाई के प्रक्रिया संबंधी अभियुक्त के अधिकार को न्यन नहीं किया जा सकता।

साक्ष्य का लिपिबद्ध करना

न्यायालय कई स्तरों पर साक्ष्य लिपिबद्ध करता है। धारा 200–202 के अंतर्गत, चार्ज पूर्व साक्ष्य प्रायव्हेट केस में, लिपिबद्ध होती है, चार्ज पश्चात भी साक्ष लिपिबद्ध होती है, देखें धारा 242, 243, 244 एवं धारा 246, आरोपी परीक्षण पश्चात भी प्रतिरक्षा में प्रस्तुत साक्ष्य लिपिबद्ध होती है।

साक्ष्य लिपिबद्ध करते समय बहुत सी बातें ध्यान रखना होती है। चूंकि यह दाण्डिक सुनवाई का मामला

होता है अतः न्यायालय का कर्तव्य सक्रिय भागीदारी का भी होता है। अपराधिक नियम एवं आदेश के नियम 118 को अवश्य देखें जो इस प्रकार है।

118- In dealing with trials and enquiries presiding officers should remember that their position is not that of judges of civil courts who decide cases on the evidence put before them and leave it to the parties concerned to see that the evidence they produce is complete. Their primary duty is the ascertainment of the facts and the punishment of the guilty. For this purpose they have, under the Evidence Act and the Code ample power. The fact that the prosecution is conducted by a public prosecutor or by a prosecuting inspector of police does not absolve the presiding officer from this duty.

अतः साक्ष्य लिपिबद्ध करते समय अधिक चैतन्यता की आवश्यकता होगी। साक्षी प्रश्न समझ रहा है या नहीं, यदि नहीं तो उसे स्पष्ट करवाना होगा, अधिवक्ता उसे दिशाभूल न करे, संयुक्त तथा प्रश्न के अंतर्गत पूर्व निहित उत्तर मान कर प्रश्न न पूछने दे। जैसे तुम अभी भी बीमार हो क्या? इसका अर्थ यह हुआ कि बीमार था यह बात ग्राह्य मान ली गई है। साक्षी चाहे उत्तर हां में दे या ना में दे उत्तर में यह आ जाएगा कि वह प्रारंभ में बीमार था। जैसे साक्षी ने कहा अब मैं बीमार नहीं हूं या बीमार हूं। साक्षी समझदार होगा तो ही वह इस प्रश्न का भेद समझकर उत्तर दे सकेगा कि मैं पहले भी बीमार नहीं था न अब भी हूं। साक्षी की समझदारी पर भरोसा रखने से बेहतर है कि हम ही समझदार व जागृत रहें।

दूसरा मुद्दा आता है लोप विसंगति एवं सारवार विसंगति का। जिस बाबत धारा 162 दं.प्र.सं. एवं धारा 145 एवं धारा 154 साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों का अध्ययन अवश्य हो। धारा 157 एवं धारा 31 साक्ष्य अधिनियम की जानकारी अच्छे से हो व अन्य प्रावधानों के अतिरिक्त साक्ष्य लिपिबद्ध करने विषयक प्रावधान धारा 135 से 167 तक को सरसरी रूप से ही सही पर देख लें समझ लें।

साक्षी के किसी पूर्व कथन में यदि कोई चिन्ह लगाना हो तो ए से ए, बी से बी, जैसे चिन्ह अवश्य लगाएं लेकिन साक्ष्य में साक्ष्य लिपिबद्ध करते वक्त ध्यान रहे कि तब ऐसा न लिखें कि ए से ए की बात बताई थी या नहीं बताई थी। अपितु ये लिखें कि ए से ए की बात को जहां ए से वाक्य शुरू होता है वहां के एक दो शब्द एवं अंतिम स्थान के ए के पहले के दो शब्द अवश्य लिखें व बीच के स्थान डॉट–डॉट लगाकर छोड़ दें। या ए से ए की बात छोटी है, तो पूर्ण लिखें। जैसे ए से ए का भाग ये है कि "मैं उपरी मंजिल से नीचे दौड़कर आया? घटना स्थल पर भागा" यह ए से ए का वाक्य है तो उसे मैं शब्द के पूर्व ए लगावें व भागा शब्द के बाद ए लगावें। साक्ष्य में या तो पूर्ण वाक्य लिखें या यह वाक्य लिखें कि मैंने अपने पुलिस कथन प्रदर्श डी 1 में ए से ए की बात की मैं उपरी ..... स्थल पर भागा" बताई/नहीं बताई थी। यदि इस वाक्य के आधार पर दिशा भूल कर के प्रतिपरीक्षण में साक्षी को पूछा गया कि तुम घटना स्थल पर भाग के गए थे क्या एवं साक्षी ने कहा नहीं, सामान्य गति से गया था। तो संभव है अभियुक्त को अधिवक्ता ये लिखा दे कि घटना स्थल पर नहीं गया था। अतः विसंगति 'भाग कर' जाने विषयक है न कि घटना स्थल पर जाने कि विषय में अतः विसंगति हेतु ए से ए का पहचान चिन्ह केवल 'भागा' शब्द पर लगेगा अन्य बातें साक्षी ने स्वीकार की हैं। ऐसी भूल वर्णनात्मक भूल या विसंगति हो सकती है सारवान नहीं। क्यों कि सारवान बात तो नहीं है कि साक्षी घटना स्थल पर गया चाहे सामान्य गति से, भागकर या बराती चाल से।

ध्यान रखना प्रत्येक साक्षी से अभियुक्त को घटना विषयक मुद्दे पर भी प्रश्न पूछने का अधिकार है चाहे वह साक्षी केवल सड़क पर पड़ी सायकल जप्ती का साक्षी क्यों न हो। कृपया धारा 138 भाग दो एवं धारा 146 को भी देख लें।

साक्षी गण को आहूत करना महत्वपूर्ण होता है। कोर्ट मुंशी भी होता है तो आदेशिका लेखक सतत् रूप

से प्रभावी नियंत्रण निरीक्षण पीठासीन न्यायाधीश का हो तो बेहतर है। साक्षीगण के नाम पते पूर्ण हो। प्रतिरक्षा में साक्षी गण को बुलाने का कर्तव्य न्यायालय का है जब साक्ष्य सूची अभियुक्त प्रस्तुत करें। यदि अनावश्यक लोगों के नाम साक्ष्य सूची में हैं तो न्यायालय ने ध्यान करके नहीं बुलाना चाहिये।

काफी वर्षों पूर्व तक आरोप पत्र के साथ साक्ष्य सूची ए एवं साक्ष्य सूची बी प्रस्तुत की जाती थी। व ए सूची के गवाह बुलाये जाना होते थे व बी सूची के साक्षी बुलाना प्रकरण की परिस्थिति पर निर्भर करता था। अब वह सूची प्रस्तुत नहीं होती है व न्यायालय भी ध्यान नहीं देता है व प्रकरण रेंगते हुए चलते हैं। उतना भी चल जावे तो अहोभाग्य वाली स्थिति आ सकती है अतः थोड़ी सक्रियता न्यायालयों से हमेशा अपेक्षित की गई है। देखें (**ज्योति फरवरी 2000 पृष्ठ 44 टिट बिट नं. 2 ज्योति अप्रेल 2000 पृष्ठ 170 से 180 एवं ज्योति 2000 दिसंबर 1999 स्टार फर्मामेंट क्र. 2 *रमेशचंद्र वि. राज्य*)** फौजदारी न्यायालयों को यह भी अधिकार है कि वह जिला न्यायालय के प्रोसेस सर्वर (आदेशिका वाहक) या अन्य लोक सेवक के माध्यम से समन्स का निर्वाह करावें (देखें **ज्योति जनरल अगस्ट 1999 पृष्ठ 331**)

दोषारोपण की तैयारी

इस संबंध में विस्तार से **ज्योति 1998 अप्रेल पृष्ठ 13 'आरोपों का विरचित किया जाना'** में बताया है। प्रारूप **पृष्ठ 22 से 24 तक** व विभिन्न दोषारोपण के प्रारूप **पृष्ठ 25 से 55 तक** दर्शाए हैं। **धारा 211 से 224 तक** के प्रावधान देख सकते हैं। पूर्व तैयारी कैसे हो यह बात भी **1997 ज्योति अक्टूबर भाग पृष्ठ 13** पर बताई है। पता नहीं ये सब बातें रुचिकर क्यों नहीं लगी। किसी ने भी स्वीकार नहीं की।

आरोपी परीक्षण

आरोपी परीक्षण धारा 313 दं.प्र.सं. के अंतर्गत होता है एक अन्य सुसंगत धारा 281 भी है। अध्ययन होना चाहिये। आरोपी परीक्षण हेतु प्रश्न तैयार करना एक कला है। इस संस्था में माननीय न्यायाधिपति श्रीमान आर. पी. अवस्थी (सेवा निवृत्त) ने सतत् रूप से बताया है। इस संबंध में विस्तार से एक लेख भी लिखा है जो **ज्योति 1998 जून पृष्ठ 17 "आरोपी परीक्षण" उद्देश्य एवं प्रश्नों की रचना"** है। वास्तव में जिस प्रकार साक्ष्य का मार्शलिंग होता है उसी प्रकार आरोपी परीक्षण हेतु साक्षियों के कथनों के आधार से प्रश्नों को मार्शलिंग किया जावे तो सारगर्भित एवं सार संक्षिप्त प्रश्न बनेंगे।

निर्णय लेखन

अपराधिक प्रकरणों में साक्ष्य भार अपवाद छोड़कर अभियोजन पर होता है। साक्ष्य शंका के परे होना चाहिये। शंका के परे साक्ष्य क्या होती है यह बात अन्य दृष्टांतों के अतिरिक्त ***दरसिंह वि. स्टेट, ए.आ .आर. 1978 सु. को. 1091*** में भी बताई है। साक्ष्य की बहुलता का सिद्धान्त यहां लागू नहीं होता है। विपरीत सुनिश्चित साक्ष्य का (स्ट्रिक्ट प्रूफ) का सिद्धान्त लागू होता है। साक्ष्य का मूल्यांकन विवेचन व सूत्रबद्ध रूप से लिखा जाना ये महत्वपूर्ण तत्व है। **ज्योति 1998 अक्टूबर पृष्ठ 30** पर इस संबंध में विस्तार से लिखा है। एक अन्य लेख **ज्योति दिसम्बर 1998 पृष्ठ 24** पर भी लिखा है। एक और लेख **ज्योति 1999 अक्टूबर पृष्ठ 354** पर भी लिखा है।

सजा के प्रश्न पर सुनना

धारा 235 (2) एवं धारा 248 (2) के अंतर्गत अभियुक्त को सिद्धदोष (गिल्टी) पाते हुए उसे यदि दोष सिद्ध (कन्विक्ट) करार दिया जाता है तो सजा (सेन्टेन्स) के प्रश्न पर प्रथमतः उसे सुना जाना है चाहे उसे प्रोबेशन का भी लाभ क्यों न देना हो। ऐसा नहीं करना है कि प्रोबेशन का लाभ देना हो तो सजा के प्रश्न पर नहीं सुना जाना है। ऐसा भी न हो कि दोषसिद्ध ठहराते ही आरोपी कस्टडी में ले लें। यदि आरोपी इस संबंध में तर्क देना चाहता है तथा समय चाहता है तो एक तारीख दी जाना चाहिये जैसा कि ***बर्न स्टेंडर्ड कं. वि. यूनियन (1991)***

3 एस.सी.सी. 467 ए.आर. 1991 सु.को. 1784, जय कुमार वि. राज्य 1999 (2) जे.एल.जे. 68, अलाद्दीन वि. स्टेट (1989) 3 एस.सी.सी. 5, मिल्कियत सिंह वि. स्टेट (1991) 4 एस.सी.सी. 341 को अवश्य देखें। (एक विस्तृत लेख इस विषय पर पृथक से लिखा जा सकेगा)

धारा 428 दं.प्र.स. के अंतर्गत विवरण बनाना होता है इस पर ज्योति जनरल में कई बार लिखा गया है लेकिन सकारात्मक परिणाम सामने आना शेष है। कृपया देखें ***दरवान वि. स्टेट ऑफ छत्तीसगढ़ 2001 (2) एम.पी.एच.टी. 81 (छत्तीसगढ़)***।

धारा 457 के अंतर्गत क्षतिपूर्ति

न्यायालयों को विस्तृत अधिकार इस प्रावधान के अंतर्गत दिए गए हैं। आहत व्यक्ति को क्षतिपूर्ति दी जा सकती है यदि अभियुक्त को सजा दी गई हो तथा अर्थदंड न भी किया हो। अ.जा., ज.जा. वर्ग के व्यक्ति यदि परिवादी है तथा अ.जा., ज.जा, से भिन्न व्यक्ति अभियुक्त है जिसे सजा दी गई है तो क्षतिपूर्ति राशि देना अनिवार्य है ऐसा म.प्र. का संशोधन है।

प्रतिभूति एवं बंधपत्र का भारयुक्त होना

प्रकरण का अंतिम निराकरण होते ही प्रतिभूति पत्र व बंधपत्र भारमुक्त हो जाते हैं व इस विषय में स्पष्ट आदेश भी निर्णय में होना चाहिये।

संपत्ति का निराकरण

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 451 से 453 एवं 455 से 459 के प्रावधान प्रकरण से संबंधित मुद्देमाल के निराकरण के विषय में है। आग्नेय अस्त्र का विनिष्टिकरण आदि न्यायालय द्वारा नहीं होता है। आर्मस् एक्ट के अंतर्गत बने नियमों के अनुसार उनका निराकरण जिला दंडाधिकारी। कलेक्टर द्वारा आपके निर्देशानुसार होना है। उसी प्रकार एन.डी.पी.एस. एक्ट के अनुसार संपत्ति का निराकरण आबकारी विभाग द्वारा आपके निर्देशानुसार होना है। नये आबकारी अधिनियम में कुछ प्रावधान विशेष रूप से किए गए हैं उनका ध्यान अवश्य कर लें।

प्रतिभूति

आजकल सबसे ज्यादा चर्चित विषय यही होता है। अनावश्यक घबराहट अतिसतर्कता एवं स्वयं के प्रति अविश्वास। जो भी काम करना है ठोक बजाकर डंके की चोट पर करना होता है। हम आप न्यायाधीश हैं। हमारा कृत्य पूर्वाग्रह से मुक्त हो सद्आशय युक्त हो, प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से भी प्रलोभन से मुक्त हो तो भय किस बात का। न्यायदान करना है। निर्भीक बनना है। न्यायिक विवेक सदाशय, साम्या व न्यास्य दृष्टिकोण लिए करें अन्यथा स्वयं निर्मित भय एवं आतंक के कारण तुच्छ से तुच्छ प्रकरण में हम प्रतिभूति का स्वीकृति आदेश नहीं देते हैं।

विविध

विविध विषयों पर ज्योति जनरल में समय–समय पर लेख प्रकाशित किए हैं वे भी प्रक्रिया संबंधी विषय को स्पष्ट कर सकेंगे वे इस प्रकार हैं :

(1)	Suspension of Sentence powers of a trial court	ज्योति जून 1996 पृष्ठ 9
(2)	अभियुक्त की अनुपस्थिति एवं न्यायिक निरोध में उसका भेजा जाना–	ज्योति जून 1996 पृष्ठ 17
(3)	प्रकरण कब कमिट किया जाना अपेक्षित नहीं	ज्योति जून 1996 पृष्ठ 17
(4)	फार्मल अरेस्ट	ज्योति अगस्त 1996 पृष्ठ 22
(5)	Theft of energy person compitante to prosecute	ज्योति अक्टूबर 1996 पृष्ठ 18

(6)	Principles of Criminal Trial	ज्योति दिसम्बर 1996 पृष्ठ 5
(7)	Cancellation of bail in bailable offences	ज्योति दिसंबर 1996 पृष्ठ 10
(8)	Early disposal of cases in Magistrates courts	ज्योति दिसंबर 1997 पृष्ठ 29
(9)	Maintenance of Malkhana, Nazrat and embezlement of property	ज्योति 1997 जून पृष्ठ 7
(10)	निर्णय लेखन, अपराधों का सुगम विवेचन	ज्योति 1997 अक्टूबर पृष्ठ 13
(11)	Penalties in case of dishonour of cheque.	ज्योति 1997 अक्टूबर पृष्ठ 7
(12)	समन्स प्रक्रिया की व्यवहारिक आवश्यकता	ज्योति 1997 दिसम्बर पृष्ठ 19
(13)	आरोपों का विरचित किया जाना	ज्योति अप्रैल 1998 पृष्ठ 13
(14)	आरोपी परीक्षण उद्देश्य एवं प्रश्नों की रचना	ज्योति जून 1998 पृष्ठ 17
(15)	अपराधिक प्रकरणों में चक्षुदर्शी साक्षी का मूल्यांकन	ज्योति जून 1998 पृष्ठ 32
(16)	गतिशील प्रबंधन प्रारंभिक तैयारी	ज्योति जनवरी 1998 पृष्ठ 13
(17)	How to write judgment/order	ज्योति दिसम्बर 1998 पृष्ठ 24
(18)	प्रक्रिया विधि संबंधी विवरण	ज्योति अक्टूबर 1998 पृष्ठ 8
(19)	व्यवहार न्यायालयों में कार्यपद्धति	ज्योति दिसम्बर 1998 पृष्ठ 5
(20)	साक्षी को उपस्थित रखने का प्रयास, आहूत करने का प्रयास	ज्योति फरवरी 2000 पृष्ठ 50
(21)	अपराधिक प्रकरणों में समझौता।	ज्योति अक्टूबर 2000 पृष्ठ 565
(22)	Granting of bail by Magistrate having no jurisdiction to try cases	ज्योति अक्टूबर 2000 पृष्ठ 576
(23)	अपराधी द्वारा मजिस्ट्रेट के सन्मुख आत्मसमर्पण करना व उसे प्रतिभूति पर मुक्त किया जाना।	ज्योति फरवरी 2001 पृष्ठ 9
(24)	क्या तुम्हें अपराध स्वीकार है? जी हां! मुझे अपराध स्वीकार है।	ज्योति फरवरी 2001 पृष्ठ 97
(25)	Setting off the period of detention against sentence	ज्योति फरवरी 2001 पृष्ठ 22
(26)	Effect of non appearnce of Complainant and Stopping of the proceedings	ज्योति एप्रिल 2001 पृष्ठ 111
(27)	Scope of Sec. 319 Cr.P.C. with reference to discharged accused	ज्योति अप्रैल 1997 पृष्ठ 36
(28)	Forfeiture of bail bond-procedure	ज्योति अप्रैल 1997 पृष्ठ 37

अल्पविराम

मित्रो विषय ऐसा है जिसका समापन संभव नहीं है, पूर्ण विराम लगाना भी उचित नहीं है अतः विषय को अल्प विराम के साथ समाप्त करना ही उचित होगा।

यद्यपि क्रिमिनल ट्रायल एवं क्रिमिनल प्रेक्टिस विषय पर चिंतन प्रस्तुत नहीं हुआ है लेकिन भविष्य में उससे संबंधित विषयों पर भी लिखा जा सकेगा। आप चाहें तो क्रिमिनल कोर्ट प्रॅक्टिस एण्ड प्रोसिजर लेखक एम.एल. सिंघल, क्रिमिनल ट्रायल, राव एण्ड राव तथा एजाज एहमद, गांगुली आदि देख सकते हैं। वार्ष्णेय एवं केलकर द्वारा लिखित पुस्तकें भी देखने योग्य है। जिला न्यायालयों की लायब्रेरी में पुरानी पुस्तकें देखते रहिये खजाना हाथ लग जाएगा।

●

धारा 228 (क) दं.प्र.सं. एवं सत्र न्यायालयों का कर्त्तव्य

पुरुषोत्तम विष्णु नामजोशी

धारा 228 (1) क दं.प्र.स. इस प्रकार है–

228. आरोप विरचित करना- (1) यदि पर्वोक्त रूप से विचार और सुनवाई के पश्चात्, न्यायाधीश की यह राय है कि ऐसी उपधारणा करने का आधार है कि अभियुक्त ने ऐसा अपराध किया है जो,

(क) अनन्यतः सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय नहीं है तो वह, अभियुक्त के विरूद्ध आरोप विरचित कर सकता है और आदेश द्वारा, मामले को विचारण के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को अन्तरित कर सकता है और तब मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट उस मामले का विचारण पुलिस रिपोर्ट पर संस्थित वारण्ट–मामलों के विचारण के लिए प्रक्रिया के अनुसार करेगा;

प्रकरण कमिट (उपर्पित) होने के पश्चात धारा 227–28 के अंतर्गत कार्यवाही होती है। धारा 227 के अंतर्गत अभियुक्त को अपराध से उन्मोचित करने की शक्ति है। धारा 228 (1) क के अंतर्गत सत्र न्यायालय द्वारा श्रवण योग्य अपराध नहीं बनता है तो मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी को प्रकरण वापस भेजने का कर्तव्य है (कर्तव्य है निर्वाह कैसे होगा यही बात यहां बताना है) यदि सत्र न्यायालय द्वारा सुनवाई योग्य चार्ज बनता है तो सत्र न्यायालय ने चार्ज लगाकर आगे कार्यवाही करना है।

हम सत्र न्यायालयों के कुछ वरिष्ठ न्यायाधीश क्या कर रहे हैं? आरोप तर्क सुनने के पश्चात हम यह अनुभव करते हैं कि प्रकरण सत्र न्यायालय द्वारा सुनवाई योग्य नहीं है तो प्रकरण को धारा 228 (1) क के अंतर्गत मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी को यही लिखकर भेज देते हैं। यह बताते ही नहीं है कि सत्र न्यायालय द्वारा सुनवाई योग्य अपराध नहीं बनता है तो किन–किन धाराओं का अपराध बन रहा है। वास्तव में सत्र न्यायालय के जो कनिष्ठ न्यायाधीश हैं उन्होंने तो विचारण न्यायालय हेतु (मजिस्ट्रियल कोर्ट हेतु) चार्ज भी लगाकर भेजना चाहिये। इससे अनुभव में वृद्धि होती है, संबंधित धाराओं का अध्ययन होता है एवं नए तत्व ज्ञात होते हैं। समय की कोई कमी नहीं होती है। दो स्थानों से इस विषय में ज्ञात हुआ। एक स्थान पर विशेष रोचक (जी हां विशेष रोचक) बात सामने आई। धारा 228 (1) क के अंतर्गत सत्र न्यायालय ने कहा कि इस न्यायालय द्वारा सुनवाई योग्य अपराध नहीं बनता है तो फाईल वापस सी.जे.एम. के यहां चली गई। मजिस्ट्रेट ने पुनः कहा कि अपराध जो बन रहा है वह सत्र न्यायालय द्वारा सुनवाई योग्य बन रहा है व फाईल वापस सत्र न्यायालय को भेजी तो सत्र न्यायालय ने पुनः उपर दर्शित बात लिखके फाईल भेज दी। क्या यह सब कार्य हम सही परिपेक्ष में कर रहे हैं? निश्चित नहीं। हम अपने कर्तव्य के प्रति जागृत नहीं है या विधि की जानकारी नहीं है या कि उपेक्षावृत्ति है या और भी कुछ कारण होंगे पर पदीय गरिमा के निश्चित विपरीत है।

दूसरी बात यह कि फाईल जो मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी को निर्देश के साथ भेजना है वह उसे ही भेजना है अन्य न्यायिक दंडाधिकारी को नहीं जिसके यहां से प्रकरण उपार्पित होकर आया है। मु. न्या. म., अपने यहां प्रकरण प्राप्त होने पर यथा प्रावधिक शक्ति के अन्य मजिस्ट्रेट को अंतरित कर सकेगा। लेकिन जहां सत्र न्यायाधीश ही स्वयं धारा 228 (1) क के अंतर्गत आदेश करके फाईल वापस भेजता है तो उसे यह अधिकार है कि चाहे तो उसे मु. न्या. दं. के पास भेजे या अन्य सक्षम मजिस्ट्रेट के यहां जहां उचित समझे भेजे। क्योंकि सत्र न्यायाधीश को वैसे भी प्रकरणों को अंतरित करने का अधिकार है। कृपया देखें **1987 एम.पी.एल.जे. 540 (*श्यामलाल वि. राज्य*) 1985 एम.पी. डब्ल्यू एन. 45 (*स्टेट वि. मनखु खान*)** एवं **1982 एम.पी. डब्ल्यू एन. 379 (*स्टेट वि. नवल सिंह*)**

ऐसे प्रकरणों में आरोप निर्मित कर मजिस्ट्रेट कोर्ट को प्रकरण कैसे भेजा जावे इसका प्रारूप भी आपकी सुविधा हेतु दिया जा रहा है।

आरोप

(कृपया धारा 211-12-13 एवं 228-29 तथा 240-246 (1) देखें)

मैं ..... अति./ सत्र न्यायाधीश, तुम ..... पुत्र ..... पर नीचे लिखे अनुसार आरोप लगाता हूं कि –

तुमने दिन ..... माह ..... सन् ..... को या उसके लगभग स्थान .... जो आरक्षी केन्द्र ..... से लगभग ..... किलोमीटर परिधि में है, में परिवादी कमल को धारदार चाकू, जो काटने का आयुध है, से (बायें कान पर मारा जिससे उसका कान कट गया व इस प्रकार) गंभीर उपहति कारित की;

और इस प्रकार तुमने वह अपराध किया जो धारा 326 भा.द.वि. के अंतर्गत मुख्य/न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा सज्ञान योग्य है तथा मैं निर्देशित करता हूं कि तुम पर आरोपित दोषारोपण की सुनवाई मुख्य/न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा की जावे।

हस्ताक्षर
(नाम)

दिनांक

पदनाम
अति/सत्र न्यायाधीश की सील

आरोप का उत्तर

अभियुक्त को आरोप पढ़कर बताने पर एवं समझाने पर आरोपी ..... पिता ..... का कहना है कि .....

हस्ताक्षर
(नाम)

दिनांक

पदनाम
मुख्य/न्यायिक दंडाधिकारी

आदेशिका प्रारूप

15.7.2001

शासन द्वारा श्री ए.बी. शर्मा सहायक/लोक अभियोजक अभियुक्त सहित श्री सी.डी. कर्मा अधिवक्ता।

2 प्रकरण आर्ज चार्ज तर्क हेतु है। तर्क सुने प्रकरण का अवलोकन किया पुलिस कोतवाली ने अभियुक्त के विरूद्ध धारा 307 भा.द.वि. के अंतर्गत आरोप पत्र प्रस्तुत किया है। लेकिन अभियुक्त की मनःस्थिति बाबत आधार, आरोपी के कृत्य का प्रकार, आशय या ज्ञान को विचार में लेते हुए यह प्रतीत होता है कि आरोपी के विरूद्ध धारा 307 भा.द.वि. के अंतर्गत अपराध सिद्ध होना ज्ञात नहीं ग्होता है अपितु धारा 326 भा.द.वि. के अंतर्गत अपराध का गठित होना प्रतीत होता है जो कि न्यायिक दंडाधिकारी प्रथम श्रेणी द्वारा सुनवाई योग्य है।

अतः धारा 326 भा.द.वि. के अंतर्गत आरोप निर्मित किया गया।

आरोप पत्र सहित यह प्रकरण मुख्य/न्यायिक दंडाधिकारी को अगली कार्यवाही हेतु भेजा जावे। मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी यदि चाहे तो वह स्वयं सुनवाई करें या किसी अन्य सक्षम न्यायिक दंडाधिकारी को प्रावधिक शक्तियों के अंतर्गत अंतरित कर सकेगा (यह वाक्य सत्र न्यायाधीश को लिखने की आवश्यकता नहीं है, वह स्वयं ही अंतरित कर सकता है)

यह कि उभय पक्ष अगली कार्यवाही हेतु मुख्य/न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय में दि. 20/7/2001 को या उक्त तिथि पर अवकाश घोषित होता है तो अगले कार्य दिवस पर उपस्थित रहेंगे। रीडर मूल रेकार्ड संबंधित न्यायालय को भेजेगा व बाद–आवश्यक कार्यवाही प्रकरण रेकार्ड रूम में जमा हो।

हस्ताक्षर
(नाम)

दिनांक

पदनाम
अति/सत्र न्यायाधीश की सील

●

बेहतर है जान लो

रिमांड (प्रतिप्रेषण) आदेश में निर्देश

प्रथमतः ध्यान **आ. 41 नि. 26 क** की ओर आकृष्ट किया जाना उचित है जो इस प्रकार है–

आ. 41 नि. 26 क- प्रतिप्रेषण के आदेश में अगली सुनवाई का उल्लेख किया जाना-

जहां अपील न्यायालय नियम 23 या नियम 23 क के अधीन मामला प्रतिप्रेषित करता है या नियम 25 के अधीन विवाद्यकों की विरचना करता है और उन्हें विचारण के लिए निर्दिष्ट करता है वहां वह उस मामले में आगे कार्यवाही के बारे में उस न्यायालय के जिसकी डिक्री की अपील की गई थी, निर्देश प्राप्त करने के प्रयोजन के लिए उस न्यायालय के समक्ष पक्षकारों की उपसंजाति के लिए तारीख नियत करेगा।

प्रावधान स्पष्ट है। कोई बात निर्वचन के लिए विचार में लेना नहीं है। विपरीत इसके इस प्रावधान का उपयोग प्रकारान्तर से अथवा सादृश्य रूप से (अनालॉजिकली) अपराधिक अपील एवं सिविल एवं अपराधिक रिविजन हेतु भी करना ही चाहिये। उन समस्त नियमित अथवा अन्य कार्यवाहियों में भी करना चाहिये जहां प्रकरण वापस विचारण न्यायालय को निर्देशित कार्यवाही करने हेतु भेजा जाता है। इस प्रावधान का उपयोग सक्रिय रूप से नहीं होता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रकरण लंबित रहते हैं। यथा अपील न्यायालय ने प्रकरण रिमांड का आदेश दिया लेकिन विचारण न्यायालय में पक्षकारों ने किस तिथि पर उपस्थित होना है नहीं दर्शाया गया। पक्षकार गणों के लिए विचारण न्यायालय में उपस्थित होने की तब तक आवश्यकता नहीं है जब तक कि विचारण न्यायालय

उन्हें समन्स द्वारा सूचित नहीं करता। समन्स के निर्वाह की क्या स्थिति है आप हम सब जानते हैं। कुछ प्रकरण ऐसे होते हैं जो विचारण न्यायालय में लंबित हैं व उन्हें वरिष्ठ न्यायालय में बुला लेने के कारण दास्त (किरकोल फाईल) कायम कर के आदेशिका लिखते हैं कि वरिष्ठ न्यायालय से फाईल प्राप्त नहीं प्रकरण वास्ते इंतजारी। तीन चार माह की तारीख लगा देते हैं। इस बीच वरिष्ठ न्यायालय से फाईल आई परंतु पक्षकारों को विचारण न्यायालय में कब उपस्थित होना है इसका निर्देश नहीं है न हमारे यहां के फाईल में हमने समय समय पर पक्षकारों को उपस्थित रहने हेतु निर्देश दिया है तब भी फाईल में आगे कार्यवाही करने में देरी होगी। कभी–कभी ऐसा होता है कि रिमांड में यह आदेश दिया कि पक्षकार गण विचारण न्यायालय में 15.7.2001 को उपस्थित होंगे व हमारे यहां कि दास्त में हमने 01.7.2001 के पेशी के समय यह आदेश दिया कि फाईल वरिष्ठ न्यायालय से प्राप्त नहीं 01.10.2001 को पुनः प्रस्तुत हो। तब भी पकडा/पाटी चलती रहेगी। आप यह लेख पढ़ते वक्त तर्क–प्रतितर्क कर रहे होंगे कि ऐसा होता है तो ये रास्ता है, वैसा होता है तो वो रास्ता है लेकिन ये तर्क कुछ ही लोग कर रहे होंगे कि हमने भविष्य में आ. 41 नि. 26 क का पालन अवश्य करना चाहिये।

आप प्रकरण को विचारण न्यायालय में अगली कार्यवाही हेतु भेजते समय आदेशिका में नीचे अनुसार लिख सकते हैं जैसेः–

"उभय पक्षों को निर्देशित किया जाता है कि वे विचारण न्यायालय में दिनांक 15.7.2001 को अगली कार्यवाही हेतु उपस्थित रहें। यदि विचारण न्यायालय ने 15.7.2001 के पूर्व की तिथि निर्धारित की है तो उसी तिथि पर जो विचारण न्यायालय ने निर्धारित की है उपस्थित रहें एवं विचारण न्यायालय ने यदि तिथि 15.7.2001 के पश्चात की निर्धारित की है तो 15.7.2001 को अवश्य उपस्थित रहें। उक्त तिथि पर पर अवकाश धारित हो तो अगले कार्य दिवस पर उपस्थित रहें।

आप यदि ऐसा कर रहे हैं तो आपको साधुवाद, नहीं कर रहे हो तो कर के देखना एक अलग छवि बनेगी।

ध्यान रहे कि विचारण न्यायालय का रेकार्ड वहां समय के पर्याप्त पूर्व पहुंच जाय इसलिए आपका चैतन्य होना जरूरी है अन्यथा बहुत से कारणों से रेकार्ड विचारण न्यायालय में पहुंचता ही नहीं है।

●

बेहतर है जान लो

एफ.एस.एल. रिपोर्ट – प्राप्त करना

अधिकांश प्रकरणों में एफ.एस.एल. रिपोर्ट (फोरेन्सिक सायन्स लेब्रोटरी) प्राप्त नहीं होती है। विभाग की अपनी समस्याएं हैं विभिन्न कारण हैं। जिन प्रकरणों में रिपोर्ट आती है वह प्रकरण के साथ संलग्न करना चाहिए। कुछ में हो पाती है कुछ में नहीं। ऐसा भी होता है कि थोक बंद रूप से ये रिपोर्ट्स (प्रतिवेदन) पुलिस अधीक्षक कार्यालय या लोक अभियोजक कार्यालय में ही बंद पड़े रहते हैं। एफ.एस.एल. रिपोर्ट का न्यायिक निर्णय में अपना विशेष महत्व होता है। हम भी दुखी मन से पुलिस अधीक्षक को एवं एफ.एस.एल. विभाग को पत्र लिखते हैं। लेकिन अधिकांश रूप से सम्पूर्ण तथ्यों का खुलासा नहीं हो पाता है अतः उक्त कार्यालय में पत्र के आधार से कार्यवाही प्रभावी रूप से नहीं होती। हम समस्या का निश्चित निदान चाहते हैं। हमें भी व्यवहारिक कठिनाईयों को समझना चाहिये। यदि किसी प्रकरण में ऐसी रिपोर्ट की तत्काल आवश्यकता हो तो हमने संबंधित प्रयोग शाला को त्वरित पत्र लिखकर सूचित करना चाहिये जिससे उस प्रकरण की रिपोर्ट वे तैयार करके आपकी ओर भेज सकते हैं। उक्त संस्था के निदेशक श्री ए.के. गुरू से चर्चा हुई थी। उन्होंने दिये हुए सुझाव के आधार से हम–आप को रिपोर्ट तुरन्त मिल सकती है। जिला न्यायालय के अभियोजक के माध्यम से

भी इस बात की सत्यता जांच लेना चाहिये कि कहीं रिपोर्ट अभियोजन कार्यालय या पुलिस अधीक्षक कार्यालय में तो नहीं है। एक काम यह भी होना चाहिये कि मॉनिटरिंग सेल की बैठक में निश्चित नाम निर्देशित प्रकरणों के नाम बताए जाना चाहिये कि अमुक प्रकरण में रिपोर्ट नहीं आई है। केवल ये कहना निदान के लिए पर्याप्त नहीं है कि रिपोर्ट्स प्राप्त नहीं होती है। ये तो तथ्य है सभी स्वीकार करते है। निश्चित रूप से तथ्य प्रदर्शित करना चाहिये। एक अच्छा उपयोगी सुझाव पत्र लिखने का है लेकिन पत्र में क्या लिखना है यह महत्वपूर्ण है। पत्र इस प्रकार से लिखा जा सकता है।

न्यायालय प्रथम अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, ...

पत्र क्र. ..... न्या. फा. दि. .....

(न्यायालयीन फाईल)

प्रति,

निदेशक
न्यायालयिक विज्ञान
प्रयोगशाला, सागर, म.प्र. 470001

विषय : एफ.एस.एल. रिपोर्ट भेजने के विषय में।

उपरोक्त विषय में निवेदन है कि निम्न प्रकरण में एफ.एस.एल. रिपोर्ट प्राप्त नहीं हुई है जिसकी त्वरित आवश्यकता है।

अतः कृपया अविलंब भेजने की व्यवस्था करें।

1. प्रकरण क्र. .....
2. प्रकरण का शीर्ष नाम .....
3. अपराध क्र. .....
4. पुलिस अधीक्षक ने मुद्देमाल जिस पत्र द्वारा भेजा उसका पत्र क्रमांक एवं दिनांक .....
5. एफ.एस.एल. विभाग द्वारा दी गई उक्त पत्र की प्राप्ति दिनांक .....
6. न्यायालय में प्रकरण की सुनवाई हेतु निर्धारित तिथि .....
7. विशेष उल्लेख .....

हस्ताक्षर
पीठासीन अधिकारी का नाम,
पद नाम सील

दिनांक .....

पृष्ठांकन ..... न्यायालय फा. दिनांक .....

प्रतिलिपि,

पुलिस अधीक्षक ..... को सूचनार्थ एवं निवेदन है कि ऊपर उल्लेखित रिपोर्ट इस न्यायालय को त्वरित भेजने हेतु व्यवस्था करें।

हस्ताक्षर
पीठासीन अधिकारी का नाम,
पद नाम सील

दिनांक .....

ध्यान रहे कि एफ.एस.एल. विभाग में किसी भी मुद्दे माल का संदर्भ पुलिस अधीक्षक द्वारा भेजे गए पत्र के आधार से त्वरित मिलता है। अतः उपरोक्त प्रारूप का क्रमांक 4 एवं 5 सही सही हो जिससे निदेशालय में कार्यवाही शीघ्र हो सके।

आशा है ऐसा करने से आपको रिपोर्ट जल्दी मिलेगी या मिलने की संभावना बढ़ेगी।

आपके तुरन्त संदर्भ हेतु उक्त निदेशालय के कार्यालय का फोन नंबर भी बता दें वो इस प्रकार है

07582–22307

वर्तमान में श्री ए.के. गुरू निदेशक हैं।

●

बेहतर है जान लो!

दोष सिद्धि एवं दंडादेश, यदि कोई हो तो। और सहायता एवं व्यय।

अपराधिक प्रकरणों में जो विभिन्न विचारणीय बिंदु निर्णय हेतु उपस्थित करते हुए बनाये जाते हैं उसमें एक बिंदु 'दोष सिद्धि एवं दंडादेश' अथवा दोष सिद्धि एवं दंडादेश, यदि कोई हो तो' बनाया जाता है। अंग्रेजी में 'Conviction and Sentence, if any' के रूप में भी बनाया जाता है। इस संबंध में **ज्योति अक्टूबर 1997 की पत्रिका में पृष्ठ 13 से 18** पर विस्तार से लिखा गया है।

कुछ क्षेत्रों से ऐसा ज्ञात होता है कि ऐसा मत है कि ऐसा बिंदु बनाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि न्यायालय वारण्ट ट्रायल में धारा 248 (2) अथवा सेशन ट्रायल में धारा 235 (2) के अन्तर्गत सजा के प्रश्न पर सुनने हेतु निर्णय को स्थगित करता है व अभियुक्त को सुनने पश्चात पृथक से सजा के संबंध में आदेश पारित करता है अतः 'दोषसिद्धि एवं दंडादेश' का मुद्दा निरर्थक है। यह शब्दाडम्बरपूर्ण होना भी कहा जाता है। अर्थात रिडॅनडन्ट के रूप में बोला जाता है।

धारा 354 (1) एवं 354 (1) (ख) दं.प्र.सं. में कहा है कि "..... every judgment refered to in section 353 shall contain the point or points for determination, the decision there upon and the reasons for the decision;

हिन्दी में धारा 354 (1) एवं (बी) दं.प्र.सं. में कहा है कि "..... धारा 353 में निर्दिष्ट प्रत्येक निर्णय, अवधारणा के लिए प्रश्न, उस प्रश्न या उस प्रश्नों पर विनिश्चय के कारण अन्तविष्ट करेगा;

अर्थात प्रत्येक अपराधिक प्रकरण के निर्णय में (चाहे अपील का निर्णय भी क्यों न हो) विचारणीय बिन्दु एवं उन प्रत्येक पर कारण सहित निर्णय दिया जाएगा। क्या अभियुक्त को दोषमुक्त किया जावे या दंडित किया जावे यह मुद्दा न्यायालय के सामने नहीं होगा? अवश्य होगा। यदि इस मुद्दे को विशेष रूप से पृथक से बना कर उस पर निर्णय कारणों सहित देते हैं तो निर्णय का सौंदर्य, खूबसूरती, छटा कुछ और होगी। पढ़ने वाले को सजा के संबंध में समझने हेतु उक्त मुद्दे (विचारणीय बिंदु) पर ही ध्यान देने पर त्वरित ज्ञात होगा कि प्रकरण में क्या परिणाम है। ध्यान करना निर्णय आप अपने लिए ही नहीं लिखते है अपितु अपील न्यायालय हेतु, वरिष्ठ न्यायालय हेतु व विशेषकर पक्षकार हेतु जो प्रत्येक अक्षर पढ़ता है व जानना चाहता है कि जज्ज साहेब ने क्या लिखा है। निर्णय की खूबसूरती आपकी योग्यता का प्रतिबिंब होता है। आपको यह विचारणीय बिंदु नहीं लिखना है मत लिखें लेकिन ये विचारणीय बिंदु लिखने से निर्णय की गुणवत्ता में अधिक वृद्धि होगी ये सुनिश्चित मानिये। निर्णय में ऐसा बिंदु पृथक से निर्मित करना व उस पर निर्णय देना निरर्थक तो निश्चित ही नहीं है। निर्णय की छटा, गुणवत्ता कैसी हो ये आप पर निर्भर करता है। गुणात्मक सुधारों से दूर रहना अथवा किनारा करना तो आसान होगा परन्तु उन्हें आत्मसात करके व्यवहार में लाना न्यायाधीश के गुणों में वृद्धि करेगा; समय के साथ क्रांतिकारी परिवर्तन होगा।

जो सजा दी जाती है वह तालिकाबद्ध बनाकर दर्शाई जावे तो निर्णय और भी अधिक सुस्पष्ट व समझनें योग्य होगा। यह बात भी **अक्टूबर 1997 की ज्योति में पृष्ठ 13 से 18** पर बताई है। कितना अच्छा होगा यदि उन पृष्ठों को देख लो, पढ़ लो अनुभव करके व्यवहार में उतारो।

यही विचार इन्हीं तर्कों के साथ व्यवहार प्रकरणों में (जिसमें अपील निर्णय भी सम्मिलित है) के विषय में समान रूप से प्रदर्शित किये जा सकते हैं। न्यायाधीश जिन्हें **'दोषसिद्धि एवं दंडादेश, यदि कोई हो तो'** तथा **'सहायता एवं व्यय'** के विषय में कारणों सहित कक्षाओं में बताया गया था उसमें से अधिकांश न्यायाधीश ऐसा नहीं करते हैं। कारण पूछने पर नहीं बताते है। एक ने चेंबर में बताया कि जिला न्यायाधीश ऐसा करने से मना कर देते हैं इसलिए हम नहीं करते। अच्छा हुआ, हमें पता लगा कि प्रशासनिक भय से वे ऐसा करते हैं। इस प्रकार के प्रशासनिक भय से मुक्त होना भी आवश्यक है ताकि विधिपूर्ण कार्य गुणवत्ता से किया जा सके।

सहायता एवं व्यय का वाद प्रश्न भी पृथक से बनाना चाहिये एवं उसमें निर्णय का क्रियाशील भाग सम्मिलित हो जिससे डिक्री सुस्पष्ट बनेगी। कृपया देखें आ. 20 नि. 4 (1) एवं 4 (2)। रीडर को सुविधा होगी। प्रकरणों की पंजी में प्रविष्टियाँ ठीक से हो सकेंगी। वरिष्ठ न्यायालय भी आसानी से समझ सकेगा। इस संबंध में भी एक लेख **1998 की ज्योति अप्रैल 1998 पृष्ठ 56 से 67** में तथा **1998 की ज्योति ऑगस्ट 1998 पृष्ठ 21 से 27** में बताया है। कृपया सकारात्मक चिंतन पर विचार अवश्य करों चाहे स्वीकार न भी करो।

●

WATER THAT DOES NOT FLOW GROWS STAGNANT

लिखितों का रद्द करण

धारा 31 विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम 1963 के प्रावधान इस प्रकार है। सुविधा के लिए अंग्रेजी अनुवाद भी दिया जा रहा है।

31. कब रद्दकरण का आदेश दिया जा सकेगा (1) कोई व्यक्ति, जिसके विरूद्ध कोई लिखत शून्य या शून्यकरणीय हो और जिसको यह युक्तियुक्त आशंका हो कि ऐसी लिखित यदि विद्यमान छोड़ दी गई, तो वह उसे गंभीर क्षति कर सकती है, उसको शून्य या शून्य करणीय न्यायनिर्णीत कराने के लिए वाद ला सकेगा; और न्यायालय स्वविवेक में, उसे ऐसा न्यायनिर्णीत कर सकेगा और उस न्यायालय को परिदत्त और रद्द किए जाने के लिए आदेश दे सकेगा।

(2) यदि लिखत भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) के अधीन रजिस्ट्रीकृत हो तो न्यायालय अपनी डिक्री की एक प्रतिलिपि ऐसे आफिसर को भेजेगा जिसके कार्यालय में लिखत का इस प्रकार रजिस्ट्रीकरण हुआ है, और ऐसा आफिसर अपनी पुस्तकों में अन्तर्विष्ट लिखत की प्रति पर उसके रद्दकरण का तथ्य टिप्पणित कर लेगा।

31. When cancellation may be ordered- (1) Any person against whom a written instrument is void or voidable, and who has reasonable apprehension that such instrument, if left outstanding may cause him serious injury, may sue to have it adjusted void or voidable and the court may, in its discretion, so adjudge it and order it to be delivered up and cancelled.

(2) If the instrument has been registered under the Indian Registration Act, 1908 (16 of 1908), the court shall also send a copy of its decree to the officer in whose office the instrument has been so registered; and such officer shall note on the copy of the instrument contained in his book the fact of its cancellation.

धारा 31 (2) का पालन न्यायालय को अनिवार्य रूप से करना होता है। यह न्यायालय का कर्तव्य होता है। अतः यदि न्यायालय को अवसर आता है कि कोई लिखत (विलेख) जो पंजीयक के यहां अथवा अन्य सक्षम अधिकारी के यहां पंजीकृत हुई है, को रद्द (निरस्त) करना हो तो निर्णय के क्रियाशील भाग 'सहायता एवं व्यय' में स्पष्ट उल्लेख करें। क्या उल्लेख होना चाहिए आगे बताया है। हमें यह मालूम होना चाहिए कि पंजीकृत विलेख पर पंजीयक कार्यालय के विभिन्न सील सिक्के लगे होते हैं। विलेख के पंजीयन का खुलासा उन सील सिक्कों पर होता है। उसमें धारा 51 रजिस्ट्रेशन ॲक्ट के प्रावधानों अनुसार 'बुक नम्बर' 'व्हाल्यूम नम्बर' 'इंडेक्स नम्बर' आदि की प्रविष्ठि होती है। न्यायालय के द्वारा विलेख रद्द किये जाने के पश्चात न्यायालय जब डिक्री की एक प्रतिलिपि पंजीयन कार्यालय भेजेगा तो उस आधार से पंजीयक अपने यहां के उल्लेखित पंजियों में, पुस्तकों में, खंडों में आदि में इस विषय में उल्लेख करेगा।

यह इसलिए होता है कि पंजीयन कार्यालय में रेकार्ड अद्यतन बना रहे। पंजीयन कार्यालय का रेकार्ड अद्यतन बना रखना इसलिए आवश्यक है कि धारा 3 संपत्ति अंतरण अधिनियम के अंतर्गत 'सूचना' शब्द की जो परिभाषा दी है उससे कई बातों की अवधारणा हो जाती है। जिसमें से इस विषय के संदर्भ में भी बताया है।

डिक्री में इस विषयक खुलासा हो कि रद्द किए जाने वाले विलेख का निष्पादन कर्ता कौन है, किसके पक्ष में विलेख लिखा गया है, संपत्ति का वर्णन चतुःसीमा क्या है किस तारीख को किस कार्यालय में किस पंजीयन क्रमांक से लेख पंजीकृत किया है तथा उसकी प्रविष्ठि किस पुस्तक, खंड आदि में की है। संभव हो तो विलेख की फोटो कॉपी भी अवश्य संलग्न कर दें।

DON'T JUST MUG UP YOUR LINES

To remember well and to memories effectively and efficiently. We must follow the following five principles consciously.

ASSOCIATION

We all know what a line is if we put four lines of equal length together, end to end, we make squares together, the result will be a cube. That is simple, isn't it? But nobody could understand the meaning of a cube without knowing the meaning of line and square.

What is true in geometry is true in every aspect of life. We learn and remember everything that is new to us only by connecting it with something that we already know. There is no other way of acquiring knowledge. You will immediately see the truth of this statement if you think of learning Sanskrit. In order to learn that water is jal in Sanskrit, we must form a connection between water and jal, and only if this connection or association is strong will it enable us to recall the Sanskrit word whenever we need it.

Up to now, a person may not have formed such an association consciously, Frequently, we are not even aware of forming associations at all. We do it subconsciously- just as a child connects the word daddy with the person who is his father without knowing anything about connections and associations.

However, it is to our advantage to form our associations consciously, and to form our connections in a way, which fits our type and requirements.

HAVE FAITH IN YOUR MEMORY

Have faith in your memory. Commit the following sentence firmly in your memory. "My brain is better than the best computer of this world". If you think you would not remember something well than the result would obviously be negative.

One of the best ways to improve confidence in your memory is by means of autosuggestion or repeating to yourself that "I remember better, I can remember better." Just think how can we expect our memory to give us good service when we continually abuse it and tell everyone that our memory is bad.

CONCENTRATION

Concentration is nothing more than hard thought which is fixed upon one thing at a time. Erase everything else from your mind except that which you are seeing or hearing. Do not permit your thoughts to stray. Finally see yourself physically depositing memory in your metal memory bank.

When you are able to do this, you are concentrating. We can compare concentration to making a donkey move. The more you push or pull, the more does it resist. Similar is case of our concentration : the more we try to concentrate, the more our thoughts stray. Thus, to concentrate on a particular subject, (we concentrate on a particular subject) we must create an interest in that subject.

POWER OF SENSES

You must clearly see and hear before you can make a memory deposit that you will be able to with draw later. Focus your sight on the object to be remembered and see it in your imagination. Hear it. Or perhaps. taste or feel it. Allow your senses to

get into the act. When you permit your senses to become involved. The impression is always seen and not easily forgotten.

Try to involve all the following six senses while memorising any thing or learning anything.

1. Sense of hearing.
2. Sense of vision
3. Sense of smell
4. Sense of taste
5. Sense of tough
6. Sense of kinaesthesia

(awareness of bodily position and movements.)

COLOUR

We all dream and sometimes get involved in daydreaming as well. Occupationally, we try to analyse our dreams or discuss out dreams with friends. But have you ever given a thought regarding the colour of the dream; whether the particular dream was coloured or just black and white? Try analysing whether your dream is coloured or black and white. If it is black and white try to see it again; consciously, in colour, then try to analyse whether a particular dream is very clear or faded. If it is faded, try to see it again in the screen of your imagination, and whenever possible, try to use full range of colours to make your picture, to make your thinking much more memorable.

EXAGGERATION

As all of us would agree, it is a quality of our brain to quickly remember things that are exaggerated. For example, we remember the long nose of Jawahar Lal Nahru, Indira Gandhi's white patch of hair and I.K. Gujral's comic beard. The mind remembers these images because they were exaggerated manifestations of a natural quality.

Whenever possible, we should try to create a mental image in intensified form of a natural thing. For example, it would not be difficult to forget a fat person if in our minds we visualise his belly.

PICTURES

Another way of improving memory is to make a picture of what we want to remember. Form a mental image of the date, theory anything else that you would want to remember as this would make your memorising process fast. if we can make an image of the motion in our minds the process would become faster and simpler.

ODDITIES

Let's say you are a student and one day your teacher delivers his lecture with a helmet on his head. You will agree that you will never forget the incident. This is an oddity.

Our brain accepts silly and odd things quickly and also retains it for longer duration. We should use this quality for memorising things effectively.

THOUGHTS

It is very difficult to convert abstract thoughts. Therefore it is helpful to visualise an image or mental picture that immediately recalls to mind the abstract idea that you want to remember.

Courtery :- **Times of India Rajasthan Plus. March 2, 2001**

मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय (अवमानना) नियम, 1980

उच्च न्यायालय मध्य प्रदेश उसके स्वयं या उसके अधीनस्थ न्यायालय के अवमानना की कार्यवाहियों को नियंत्रित करने के लिए भारतीय संविधान की धारा 225 के द्वारा प्रदत्त अधिकारों, न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 23 एवं इस संबंध के अन्य प्राधिकृत अधिकारों को प्रयोग करते हुए निम्नलिखित नियम बनाता है :–

1. नाम :-

(1) इन नियमों को म.प्र. उच्च न्यायालय (न्यायालय के अवमानना संबंधित कार्यवाहियां) नियम, 1980 कहा जावेगा।

(2) म.प्र. राज्य पत्र में प्रकाशित होने के दिनांक से ये प्रभावशील होवेंगे।

2. परिभाषाएं :- इन नियमों में जब तक कि संदर्भ या विषय से अन्यथा न हो निम्न अभिप्रेत होगा :–

(अ) अधिनियम से अभिप्रेरित न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 (1971 का 70) है।

(ब) उच्च न्यायालय से अभिप्रेत म.प्र. उच्च न्यायालय है।

(स) संहिता से अभिप्रेत द.प्र.सं. 1973 (1974 का 2 है)

(ड) अधीनस्थ न्यायालय से म.प्र. उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय अभिप्रेत है।

(क) रजिस्ट्रार से अभिप्रेत म.प्र. न्यायालय का रजिस्ट्रार जिसमें अतिरिक्त रजिस्ट्रार सम्मिलित है।

(स) इन नियमों में प्रयुक्त ऐसे समस्त अन्य शब्द एवं अभिव्यक्तियां जिन्हें यहां परिभाषित नहीं किया गया है उनका वही अभिप्रेत होगा जैसा अधिनियम में उन्हें दिया गया है।

"सिविल" अवमानना एवं आपराधिक अवमानना से वही अभिप्रेत है जैसा उसे अधिनियम में परिभाषित किया गया है।

संज्ञान एवं प्रक्रिया

(अ) **आवेदन के पक्षकार :** अधिनियम के अधीन कार्यवाही प्रारंभ करने के प्रत्येक आवेदन को या तो अवमानना प्रकरण (अपराधिक) या अवमानना प्रकरण (सिविल) के रूप में पंजीकृत किया जावेगा। अवमानना प्रकरण (अपराधिक) अथवा अवमानना प्रकरण (सिविल) जो दो जजों की बेन्च का है का विचारण एवं निर्णय उपयुक्त डिवीजन बेन्च द्वारा किया जावेगा, एवं अवमानना प्रकरण (सिविल) का विचारण जो एकल बेन्च से संबंधित है का विचारण एवं निर्णय उपयुक्त एकल पीठ के द्वारा किया जावेगा।

(ब) ऐसे प्रत्येक अवमानना प्रकरण (क्रिमिनल) की सूचना महाधिवक्ता को प्रेषित की जायेगी।

(स) आवेदन के द्वारा प्रारंभ कार्यवाहियों में कार्यवाही प्रारंभ करवाने वाले व्यक्ति को आवेदक उल्लेखित किया जावेगा तथा काज टाइटिल निम्न होगी :–

इन रि. ..... (कंटेम्नर का नाम पता आदि)

4. आवेदन की अर्न्तवस्तु :-

(अ) नियम 3 के अधीन प्रस्तुत प्रत्येक प्रस्तावना, आवेदन या निर्देश में स्पष्ट भाषा से उन तथ्यों के अवमाननीय कथनों का जिनको कारित करने का कंटेम्नर का दोषी होना आरोपित हो उल्लेख होवेगा एवं उन तारीख या तारीखों का जिनमें अवमानना का कारित होना आरोपित हो उल्लेख होवेगा।

(ब) जहां आवेदक किन्हीं दस्तावेज या दस्तावेजों का विश्वास प्रकट करता हो उन्हें वह आवेदन के साथ प्रस्तुत करेगा।

(स) अधिनियम के आधीन कार्यवाही करने का प्रत्येक आवेदन शपथ पत्र के साथ समर्थित होवेगा एवं मध्य

प्रदेश उच्च न्यायालय के नियम के अध्याय चार में उपबंधित नियम 2 व 3 प्रावधानों के अनुपालन में न्यायालय में प्रस्तुत किया जावेगा।

5. (अ) अधिनियम की धारा 15 (2) के अन्तर्गत अधीनस्थ न्यायालय के द्वारा निर्देश स्वप्रेरणा पर या आवेदन प्राप्त होने की स्थिति में किया जा सकेगा।

(ब) निर्देश प्रेषित करने के पूर्व अधीनस्थ न्यायालय कंटेम्नर को कारण बताओ सूचना जो संगत दस्तावेज, यदि कोई हो, के साथ संलग्न कर सूचित करते हुए प्रारंभिक जांच करेगा और कारण बताओ सूचना का जवाब प्राप्त होने के उपरान्त यदि भेजा जावे अधीनस्थ न्यायालय निर्देश का यह कारण सहित उल्लेख करते हुए कि क्यों अवमानना कारित होना प्रतीत होता है संक्षिप्त आदेश लिखेगा।

6. महाधिवक्ता के द्वारा अधिनियम की धारा 15 उपधारा (2) के अन्तर्गत प्रस्तुत प्रस्ताव में उन आरोपों के तथ्यों का जो प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति के द्वारा लगाये गये हों एवं महाधिवक्ता की सहमति का उन संक्षिप्त कारणों सहित कि सहमति क्यों दी गई उल्लेख होवेगा।

7. सिविल अवमानना के प्रकरणों में संबंधित न्यायालय उच्च न्यायालय में निर्देश प्रस्तुत करते समय यथासंभव उसी प्रक्रिया का पालन करेगा जो प्रक्रिया आपराधिक अवमानना प्रकरणों के निर्देश के संबंध में विहित की गई हों।

सूचनायें

8. (अ) उच्च न्यायालय के द्वारा कंटेम्नर को प्रेषित प्रत्येक सूचना प्रस्ताव आवेदन या निर्देश, जैसा भी मामला हो की प्रति तथा शपथ पत्र की प्रति, यदि हो या उन दस्तावेजों की प्रति जो अवमानना के कृत्य का आधार हों के साथ संलग्न कर इन नियमों में निर्दिष्ट फार्म के नमूने में होवेगी।

(ब) ऐसी सूचना उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार या अतिरिक्त रजिस्ट्रार सूचना जब तक कि न्यायालय इस संबंध में कारण बताते हुए अन्यथा निर्देशित न करे आरोपित व्यक्ति पर व्यक्तिगत रूप से तामील की जावेगी। अन्यथा निर्देशित होने की दशा में विकल्पनीय तामीली सिविल प्रक्रिया संहिता एवं म.प्र. उच्च न्यायालय के नियम के द्वारा अधिकृत प्रक्रिया से की जा सकेगी।

9. यदि न्यायालय को यह संतोष हो जाता है कि आरोपित व्यक्ति फरार हो रहा है या उसके फरार होने की संभावना है या वह नोटिस की तामीली से बचने के लिए छुप रहा है या उसके छुपने की संभावना है तब न्यायालय उस व्यक्ति के गिरफ्तारी वारन्ट का आदेश कर सकेगा जो आपराधिक अवमानना के मामलों में अधिनियम की धारा 17 उपधारा (3) व (4) के अधीन उसकी सम्पत्ति की कुर्की के वारन्ट के सहित या रहित हो सकेगा। नियमों में विहित फार्म 2 का ऐसा वारन्ट संहिता की धारा 77 में बतलाई गई रीति से पृष्ठांकित किया जा सकेगा।

10. जब कभी भी उच्च न्यायालय सूचना प्रेषित करता हो तब वह आरोपित व्यक्ति की व्यक्तिगत उपस्थिति को माफ करते हुए उसे अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थिति होने की सम्मति दे सकेगा एवं कार्यवाहियों के किसी भी स्तर पर अपने स्वयं विवेक से ऐसे व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने का आदेश दे सकेगा और यदि आवश्यक हुआ तो ऐसी उपस्थिति का ऊपर बताई गई रीति से क्रियान्वित कर सकेगा।

11. जब कोई व्यक्ति जिसके विरूद्ध अवमानना के आरोप हो उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता है या प्रस्तुत किया जाता है और यदि वह अभिरक्षा में हो या विचारण के किसी भी स्तर में जमानत देने को तैयार हो तब वह व्यक्ति जमानत पर छोड़ दिया जावेगा और यदि उसके द्वारा पर्याप्त राशि का या जो न्यायालय निर्देशित करे ऐसा प्रतिभूति सहित या रहित जो इन शर्त सहित होवे कि बंध पत्र में उल्लेखित

समय व दिनांक को एवं आगे भी उपस्थित होवेगा, निष्पादित करे तो वह व्यक्ति अन्यथा निर्देशित न होने तक उपस्थिति होता रहेगा।

और आगे यह भी कि यदि उच्च न्यायालय उचित समझे तो ऐसे व्यक्ति से जमानत लेने की बजाय आगे उपस्थित होने के प्रतिभूति रहित व्यक्तिगत बंधपत्र पर या बिना किसी बंध पत्र के छोड़ सकेगा। बंध पत्र इन नियमों में संलग्न फार्म 2 के अनुसार होवेगा।

(ब) इन नियमों के अधीन निष्पादित बंध पत्रों में संहिता की धारा 438 से 448 एवं 450 के प्रावधान जहां तक हो लागू होवेंगे।

जांच

12. (अ) धारा 14 के आधीन प्रेषित निर्देश को छोड़कर ऐसा कोई व्यक्ति जिस पर अवमानना का आरोप है उस तारीख पर जो उसकी उपस्थिति हेतु नियत हो या उस उन अन्य तारीख पर जो न्यायालय इस संबंध में निश्चित करे अपनी बचत में शपथ पत्र प्रस्तुत कर सकेगा।

(ब) यदि ऐसा व्यक्ति आरोप के संबंध में अपने दोषी होने का अभिवाक करता है तो न्यायालय उसके अभिवचन को लिखेगा एवं उसे अपने विवेक पर सिद्ध करते हुए इन नियमों में संलग्न फार्म नं. 3 के अनुरूप वारन्ट पर कारागार में निबद्ध करने हेतु भेज सकेगा।

(स) यदि ऐसा व्यक्ति आरोपों का दोषी होने का अभिवाक नहीं करता या इन्कार करे या विचारण का दावा करे या न्यायालय उसे आरोपों की स्वीकृति के बाद सिद्ध दोष न करे तब वह आरोपों पर या तो शपथपत्र के आधार पर या ऐसी साक्ष्य जो वह उचित समझ लेने के उपरान्त निश्चित कर सकेगा।

13. नियम 5 से 7 में दर्षित दस्तावेजों सहित एक पेपर बुक चार प्रतियों में आवेदक के द्वारा या निर्देश भेजने वाले न्यायालय के द्वारा प्रस्तुत की जावेगी।

14. उस मामले में जहां कार्यवाही उच्च न्यायालय के द्वारा स्वप्रेरणा पर या महाधिवक्ता के प्रस्ताव पर प्रारंभ की गई हो वहां रजिस्ट्री के द्वारा चार प्रतियों में पेपरबुक तैयार की जावेगी।

15. मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय के नियमों में निर्दिष्ट सत्य प्रतिलिपियों को प्रदान किये जाने, आदेशित शुल्क एवं दस्तावेजों के अनुवाद से संबंधित नियम या ऐसे विषय से संबंधित नियम जिन पर इन नियमों में कोई प्रावधान निहित न हो उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों पर यथायोग्य परिवर्तन सहित लागू होवेंगे एवं इसी प्रकार जब कार्यवाही अधीनस्थ न्यायालय में लम्बित होवे तब उस कार्यवाही पर उच्च न्यायालय के द्वारा अधीनस्थ न्यायालय के कामकाज के संचालन हेतु बनाये गये नियम लागू होवेंगे।

16. अधिनियम के अन्तर्गत समयोचित कार्यवाहियों में पारित आदेशों का क्रियान्वयन निष्पादन एवं परिपालन उसी प्रकार होवेगा जैसे वे संहिता के अन्तर्गत उच्च न्यायालय के द्वारा पारित आदेश हो।

17. न्यायालय परिस्थितियों के अनुसार जैसा उचित समझे वैसे जुर्माना अधिरोपित कर सकेगा। ऐसे अधिरोपित जुर्माने को संहिता के अधीन निर्दिष्ट रीति से वसूल किया जावेगा।

18. **निरसन और व्यावृतियां** :- इन नियमों के प्रभावशील होने पर सभी अस्तित्ववान नियम या वैसे नियम जो इन नियमों में निर्दिष्ट विषयों से संबंधित हो निरसित हो जावेंगे परन्तु आगे यह निरसन इन नियमों के संशोधन के पूर्व अस्तित्ववान नियमों के अधीन किये गये किसी कार्य या निर्णय, निपटारा कोई भी आदेश या कार्यवाहियों को अवैधानिक नहीं बना देगा।

नोट - अंग्रेजी अनुवाद ज्योति फरवरी- 2001 पृष्ठ 31 पर प्रकाशित किया है।

●

TIT-BITS

1. ABUSE OF PROCESS OF COURT/LAW :- UNSCRUPULOUS LITIGANTS DUTY OF COURT
(2000) 6 SCC 120
RAJAPPA Vs. MAHADEO

Unscrupulous litigants adopt debious methods, including filing of fradulent litigation, to defeat orders of courts, held, Court must take serious note and pass appropriate orders and issue necessary directions which may include imposing of exemplary costs.

BENAMI TRANSACTIONS (PROHIBITION) ACT, 1988 : SECTION 4 (1) :-

The provisions are retrospective in operation and are not applicable to pending suits filed and entertained before coming into operation of this section.

●

2. ADMINISTRATIVE LAW : ARBITRATION AND CONCILIATION ACT, SECTION 11 (6) AND CONSTITUTION OF INDIA, ARTS. 32, 136 AND 226 :-
(2000) 7 SCC 201
KONKAN RAILWAY CORPN. LTD. Vs. MEHUL CONSTRUCTION CO.

Order passed under Section 11 (6) by the Chief Justice of the High Court or his nominee is an administrative order and cannot be challenged under Article 136 or 32 of the Constitution. Writ of mandamus may be issued.

●

3. (1) ADVOCATES ACT, SECTION 35, (2) CONTRACT ACT, SECTIONS 17 AND 148 : LIEN, (3) SALE OF GOODS ACT, SECTION 2 (7) AND (4) C.P.C., O. 3 R. 4 (2) : AND SECTION 303 : PLEADER OF CHOICE : THE RIGHT OF THE ACCUSED OR A PARTY :-
(2000) 7 SCC 264
R.D. SAXENA Vs. BALRAM PRASAD SHARMA

Professional misconduct. Refusal to return case files when demanded by client, held amounts to professional misconduct. Advocate has no lien in respect of litigation papers in his keeping even where there is a dispute regarding payment of his fees. Obligation to return the brief is not just a legal duty but a moral imperative. Advocate has other legal remedies to recover such fees. Litigant is free to change his advocate when he feels that the advocate retained cannot espouse his cause efficiently or that the conduct of such advocate is prejudicial to his interest or for any other reason. Moreover, permitting an advocate lien over the case files in view of fees claimed by him, it was held that would result in serious abuse and exploitation of illiterate litigants. Further, the cause in a court/ tribunal is far more important than the right of an advocate to his fees. It was held, the Bar Council of India rightly found the appellant guilty of professional misconduct for refusing to return the case files of his client Bank on the basis of the claim that the Bank had still to pay the balance of his fees.

Advocate, held, is within his rights to deduct his fees from any money of the client remaining in his hand or termination of proceedings, but the rules do not provide him with a lien over the litigation papers and files. Generally, in common law, Advocate has no lien in respect of litigation papers required for progress of lis filed in court.

Advocate's right to retain as security for a general balance of account, any "goods bailed" to him. It was held litigation papers and case files cannot be equated with "goods bailed" under Ss. 171 and 148 of Contract Act. Legal practitioner therefore has no lien over such papers and files and is obliged to return the same to his client on demand.

Construction of words and phrases. Where the statute does not define a word (**"goods"** in this case as used in S. 171, Contract Act), held the legislature should be presumed to have used it in its ordinary dictionary meaning.

●

4. AGE : DETERMINING FACTOR :-
(2000) 7 SCC 224
STATE OF H.P. Vs. MANGO RAM

Medical evidence, on the basis of physical features, doctor opining that age of prosecutrix must be between 13 and 14 years. Senior Medical Officer (Dental) on examination taking the view that age of prosecutrix was about 13 years. Medical Officer-cum-Radiologist on X-ray examination stating that the probable age of prosecutcix must be within 14 to 16 years. It was held that finding of the Sessions Court that the prosecutrix was above the age of 16 years was based on faulty reasons and unsupported by evidence.

I.P.C., SECTION 376 : APPRECIATION OF EVIDENCE :-

Offence of rape being a serious one court should pay careful attention and show greater sensitivity. Evidence should be appreciated on broader probabilities.

●

5. ARBITRATION ACT, SECTIONS 17, 30, 30 (1) (vi) :-
(2000) 6 SCC 94
ISSAR CONSTRUCTIONS Vs. N.P. RAM KRISHNA REDDY

The outcome of an order dismissing an application for condonation of delay in filing an application under S. 30 Arbitration Act for setting aside an award, held, in effect is that the prayer for setting aside the award has been refused on the ground of delay. Such an order is ultimately therefore an order under Section 30 and so appealable under S. 39 (1) (vi) r/w S. 17. Upon dismissal of their application under S. 5 Limitation Act, respondents filing revision petition under S. 115 CPC. High Court allowing revision, condoning delay and remitting matter to trial court for decision on merits. It was held that revision under S. 115 CPC did not lie. However, if the issue had been raised, it would have been open to High Court to convert the revision petition into an appeal. Therefore, order of High Court allowed to stand and held, the case was an appropriate one for Supreme Court to exercise its powers under Art. 142 and decide it on the merits of the reasons given by the High Court for condoning the delay.

●

6. ARBITRATION AND CONCILIATION ACT, SECTION 8, LIMITATION ACT ART. 137:
2000 (4) M.P.H.T. 356
M/S. PANDEY & COMPANY Vs. POWER GRID CORPORATION OF INDIA LTD.

Appellant/petitioner accepted the final bill without any protest after full and final settlement. No claim certificate was also submitted. Thereafter, dispute between the parties with regard to payment for extra work executed by the appellant/ petitioner sought invok-

ing the arbitration clause. It was held that no further claim would come within the realm of arbitration. As the final appeal was received without protest after full and final statement. There was also no claim certificate.

Dispute with regard to payment, contract closing certificate was issued on 3rd January, 1995. The appellant/petitioner filed the application on 17-9-1998, i.e. after lapse of 3 years, Art. 137 Limitation Act attracted. Hence petition is barred by time and not maintainable.

NOTE:- Judicial Officers are requested to go through the provisions of Section 62 and 63 of the Contract Act regarding novation of contract, full and final settlement.

●

7. BOMBAY POLICE ACT, SECTION 161 (1) AND WORDS AND PHRASES : "UNDER COLOUR OF DUTY" EXPLAINED :-
(2000) 6 SCC 195
K.A. PATEL Vs. STATE OF GUJARAT

The words "under colour of duty" have been used in Section 161 (1) to include acts done under the cloak of duty, even though not by virtue of the duty. When he (the police officer) prepares a false panchnama or a false report he is clearly using the existence of his legal duty as a cloak for his corrupt action or "as a veil to his falsehood". The acts thus done in dereliction of his duty must be held to have been done "under colour of the duty".

Part of paragraph 15 of the judgment is reproduced :-

A three-Judge Bench of this Court in ***Virupaxappa Veerappa Kadampur Vs. State of Mysore, AIR 1963 SC 849*** has considered the amplitude of the expression "under the colour of any duty or authority" as envisaged in the sub-section. After making reference to some of the earlier decisions rendered by the Bombay High Court and after noticing the meaning of the expression "colour of office" given in law lexicons, learned Judges observed thus:

> "Whether or not when the act bears the true colour of the office or duty or right, the act may be said to be done under colour of that right, office or duty, it is clear that when the colour is assumed as a cover or a cloak for something which cannot properly be done in performance of the duty or in exercise of the right or office, the act is said to be done under colour of the office or duty or right. It is reasonable to think that the legislature used the words 'under colour' in Section 161 (1) to include this sense.

Cr.P.C., SECTIONS 399 AND 401 : REVISION BEFORE THE SESSIONS COURT AND REVISION BEFORE THE HIGH COURT :- NEW GROUND WHEN CAN BE RAISED :-

When revision petitioners (appellants) were challenging the very issuance of process against them, they can raise the additional ground that the complaint against them was barred under S. 161 (1) of Bombay Police Act having been filed after the period prescribed therein, even if they had not raised that ground before the trial court. When an additional ground was considered and decided by Sessions Court on merits in revision, held, High Court in further revision erred in refusing to go into that question merely because that same was not raised before the trial court.

Merely because the appellants did not raise the legal points based on Section 161 of the Bombay Police Act before the Metropolitan Magistrate, they are not estopped from

canvassing on that additional ground also before the Sessions Court in revision as they were challenging therein the very issuance of process against them. The position may be different if the Sessions Judge had avoided dealing with the contention based on Section 161 (1) of the said Act on the premise that it could be raised before the trial Court. But when the Sessions Judge had opted to go into that question and rendered a decision on it on merits it is difficult to concur with the reasoning of the High Court that the said aspect would not be gone into by the High Courts as the same was not raised before the trial Court.

Cr.P.C., SECTION 397 (2) : REVISION NOT EXERCISABLE IN RELATION TO INTER-LOCUTORY ORDER : TEST OF :-

Order passed during interim stage is not the sole test. If the objection raised by a party is such that it would result in culminating the proceedings, then order passed on such objection would not amount to interlocutory order. Where in revision filed by appellant against Magistrate's order taking cognizance of offences alleged in respondent's complaint appellant raising an objection that the complaint was barred by limitation under S. 161 of Bombay Police Act, the objection if upheld would have the effect of terminating the entire prosecution proceedings against the appellate and hence the Magistrate's order cannot be treated as interlocutory and would not be hit by S. 397 (2). It was held that in deciding whether an order challenged is interlocutory or not as for Section 397 (2) Cr.P.C., the sole test is not whether such order was passed during the interim stage. The feasible test is whether by upholding the objections raised by a party, it would result in culminating the proceedings, if so any order passed on such objections would not be merely interlocutory in nature as envisaged in section 397 (2) Cr.P.C. In the present case, if the objection raised by the appellants were upheld by the Court the entire prosecution proceedings would have been terminated. Hence, as per the said standard, the order was revisable.

●

8. CONTRACT ACT, SECTION 73 : DAMAGES FOR BREACH OF CONTRACT :(SEE S. 74 OF THE CONTRACT ACT ALSO)
(2000) 7 SCC 379
SURJIT KAUR Vs. NAURATA SINGH

Where contract itself sets out, compensation has to be paid. The Court must abide by it.

Paragraph 17 of the judgment is reproduced :-

It is to be seen that the suit was for specific performance or in the alternative for a sum of Rs. 40,000 as compensation. The sum of Rs. 40,000 was claimed as the suit agreement inter alia provided as follows :

"Due to any reason, if I don't get sale deed executed then purchaser can get it done through court of law or he can claim double the advance amount paid to me."

No reasons have been given by the trial court as to why this term of the suit agreement should not be given effect to. No reasons have been given as to why compensation of only Rs. 8800/- was awarded when what was to be returned, if the appellant could not get sale deed executed, was double the amount. The trial court has held that the 1st respondent was ready and willing to perform the whole of the agreement. The trial Court has noted that the appellant could not perform the agreement in its entirety in as much as

she could not deliver possession. As the 1st respondent had elected not to accept performance in part the trial court held that the agreement could not be specifically enforced. However, in such an event the trial court should have directed payment of Rs. 40,000 as provided in the agreement. We accordingly vary the decree granted by the trial court to the extent that the appellant shall repay Rs. 20,000 with interest thereon at 12% p.a. from 30-6-1981 till payment and also pay another sum of Rs. 20,000 with interest thereon at 12% p.a. from the date of decree till payment.

●

9. CONTRACT ACT, SECTION 73 : BREACH OF CONTRACT : DAMAGES- NATURE AND QUANTUM IN CASE OF MENTAL AGONY :-
(2000) 6 SCC 113
GHAZIABAD DEVELOPMENT AUTHORITY Vs. UNION OF INDIA

It was held that damages for mental agony are not payable in case of breach of ordinary commercial contract. Purpose of awarding damages is to put complainant monetarily in the same position as he would have been in if contract had been performed. Therefore rule as to remoteness of damages would come into play. Reasonable interest on equitable grounds may be awarded in appropriate cases where there is no express or implied contract for its payment nor any applicable statutory provision.

WORDS AND PHRASES : "INVITATION TO OFFER" :-

Brochure issued by Development Authority. According to a term in Brochure, no interest would be payable to claimant in case he were to withdraw his offer or surrender it. Such term would have applicable only if claimant-applicant himself was responsible for creation of circumstances resulting in necessity of refund.

●

10. COMPANIES ACT, 1956, SECTIONS 113 (2) AND 621 : TRANSFER OF SHARES : DEFAULT BY COMPANY : COGNIZANCE BY COURTS :-
(2000) 6 SCC 133
REGISTRAR OF COMPANIES Vs. RAJSHREE SUGAR & CHEMICALS LTD.

Complainant alleging commission of offence by respondent under S. 113 (2) filed by appellant Registrar of Companies under S. 621 after expiry of period of six months from the date of offence as prescribed under S. 468 (2) (a) r/w S. 469 (1) (a) Cr.P.C. but within the period of six months from the date on which the offence came to the knowledge of the Registrar. It was held that the complaint was within the period of limitation in view of S. 469 (1) (b) Cr.P.C. since the expression "person aggrieved" used therein includes Registrar of Companies in respect of offences (except those under S. 545) against the Companies Act. Hence there was no bar of taking cognizance of offence.

WORDS AND PHRASES : "PERSON AGGRIEVED" : SECTIONS 113 (2) & (3) :

Transferee who is not a shareholder cannot file a complaint under S. 113 (2).

●

11. C.P.C.O. 9 Rr. 6 AND 13 PROVISO :-
2000 (3) M.P.L.J. S.N. 2
OM PRAKASH Vs. M/s COMMERCIAL AUTOMOBILES

Setting aside ex-parte decree. summons were served on defendants/non applicants

to appear on 27-10-1990 but they did not appear on the ground that presiding officer was not there. It was held that once summons have been served the party is not absolved to appear on the ground presiding officer is on leave. Approach of trial Court in setting aside ex-parte decree on that ground under O.9 R. 13 not correct in view of proviso to Rule 13. **1999 (2) MPLJ 644=1999 (2) JLJ 193 and 1995 MPLJ 105=1994 JLJ 747** did not consider the effect of the proviso to O. 9 R. 13 as inserted on 1-2-1977. Revision allowed setting aside order of trial Court.

NOTE:- Judicial officers are to go through **1999 JOTI JOURNAL part 6 at page 478** for detailed study on the subject.

●

12. C.P.C., O. 23 R. 3 AND SECTIONS 100, 114 AND 115 : THE APPLICANT/JUDGMENT - DEBTOR HAS CHALLENGED THE EXECUTABILITY OF COMPROMISE : DECREE FOR EVICTION :-
2000 (4) M.P.H.T. 200

In an eviction suit defendant- tenant himself undertakes to vacate the premises within the stipulated period. Hence ground under Section 12 (1) (a) of the Act has been made out. The decree passed by the Civil Court is within the jurisdiction. There was no inherent lack of jurisdiction on the part of the executing court. Once the High Court had declined to interfere the same, High Court could not take a contrary decision on the same subject matter. **AIR 1970 SC 1** followed.

The question raised by the tenant-judgment debtor in revision was same as raised in second appeal which was negative. It would amount to review earlier order. There is no jurisdiction either on facts or in law.

●

13. C.P.C., O. 7 R. 11-B : REJECTION OF PLAINT : PAYMENT OF COURT FEES :-
2000 (4) M.P.H.T. 318 (FB)
SUBHASH CHAND JAIN Vs. THE CHAIRMAN, M.P.E.B.

Party has a right to put his own valuation where the Court finds that the plaint is undervalued and it is required to specify correct valuation. Plaint would be rejected if the plaintiff fails to correct the same in the time fixed by the Court. It is left on the plaintiff to make his own estimation of relief sought in the plaint. Valuation of the court fees must be based on allegations in plaint including substantive relief claimed therein. Court has to intervene, where the plaint and relief is undervalued arbitrarily or is unreasonable.

Paragraph 6 of the judgment is reproduced :

The suits which are mentioned under Section 7 (iv) of the Act of 1870 are of such nature where it is difficult to lay down any standard of valuation. This means that the valuation of the reliefs will have to be made by the plaintiff under the entry against which the suit is preferred. Provisions of O. 7 R. 11-B of the CPC provides inter-alia that the plaint shall be rejected where the relief claimed is under-valued and the plaintiff, on being required by the Court to correct the valuation within a time fixed by it, fails to do so. Under this provision, Court has to reach a finding of under-valuation, specify the correct valuation of the relief, determine the same and require the plaintiff to correct the same within the time fixed by the Court. Failure to do so would entail rejection of the plaint. Obviously,

the Court would undertake this enquiry in the interest of revenue after realising that the valuation of plaintiff is demonstratively unreasonable and case for interference is made out. Otherwise the plaintiff is free to make his own estimation of the reliefs sought in the plaint and the valuation both for purposes of Court fee and jurisdiction has to be ordinarily accepted.

●

14. C.P.C., O. 9 R. 13 : SETTING ASIDE EX-PRATE DECREE : NOTICE TO ONE PROVED : SECOND RESUMED AS ITS JOINT TENANCY :-
2000 (4) M.P.H.T. 206
JAGDISH Vs. OM PRAKASH

There was a single tenancy in favour to two defendants. Status of defendants was of joint tenants. Admissions of one of the joint tenants about his having received summons and plaint. Service of summons was conclusive and decisive. Trial Court recorded cogent reasons. The High Court upheld the order of the trial court setting aside the ex-parte decree.

●

15. C.P.C., O. 9 R. 13 : EX PARTE DECREE : CHANGE OF ADVOCATE : CIRCUMSTANCES HOW TO BE SEEN :-
2000 (4) M.P.H.T. 237
KIRAN BHASIN Vs. SHYAM BHASIN

There was an ex parte decree against petitioner wife. The application for setting aside the ex parte was filed on the date fixed for evidence. The counsel did not attend the court as he was ill. The trial Court rejected the application on the ground that the petitioner changed certain Advocates on prior occasions also. In hearing the High Court held that application cannot be rejected on this ground. Trial Court ought to have fixed another date and last opportunity ought to have granted. For mistake of a counsel or for the reasons of counsel's health a litigant should not suffer. Revision was allowed.

●

16. C.P.C., O. 8 R. 10 AND O. 9 R. 6 : RIGHT OF THE DEFENDANT TO CROSS- EXAMINE PLAINTIFF'S WITNESSES AND LEAD EVIDENCE IN ABSENCE OF WRITTEN STATEMENT :-
2000 (4) M.P.H.T. 259
SURAJ PAL Vs. MANDIR MAHADEOJI & RAM JANKI VILLAGE

Several opportunities were given for filing written statement. The defendants/applicants chose not to file written statement. Trial Court passed order refusing to permit defendants to file statement. Plaintiff/respondent led evidence. The defendants/applicants prayed for permission to lead evidence in rebuttal. Trial Court rejected the same. The another application moved to recall of the order refusing to file written statement. The trial Court also rejected the same. Revision preferred. A very limited type of evidence is permissible to be led in rebuttal. No inference can be made in trial Court's order. Rejecting the application to recall of the order refusing to permit to file written statement. **AIR 1955 SC 425** was followed. **1979 JLJ 172** relied on.

NOTE : Judicial Officers are requested to go through the ruling of **AIR 1964 SC 993**

relating to relegate back, i.e. go back to the original position and Article published in **'Joti Journal' 1999 Pt. 6, December at page 494 relating to "O. 8 R. 10 CPC के अंतर्गत आदेशिका का लिखना"।**

●

17. C.P.C., SECTION 11 : RES JUDICATA :
(2000) 6 SCC 1
BABA CHARAN DASS UDHASI Vs. MAHANT BASANT DAS

Questions answered in an appellate judgment which has become final, held, cannot be re-opened.

LIMITATION ACT, ARTICLE 58 : SUIT FOR DECLARATION

Where defendant set up independent title to suit property and plaintiff filed suit for declaration and possession, during pendency of which defendant was appointed receiver; and such position continuing throughout appellate stage : plaintiff withdrawing appeal before Supreme Court in order to take action according to indications in High Court judgment (to arrange for appointment of Mathadhipati in this case); plaintiff, appointee of original plaintiff, then filling suit for declaration. It was held that time taken during original suit and appeals (over 17 years in this case) would not count for purpose of limitation.

●

18. C.P.C. O. 21 R. 2 (1), (2), (3) AND SECTION 47 :
(2000) 7 SCC 240
LAKSHMI NARAYAN Vs. S.S. PANDIAN

Compromise by court can only be recognised by a court if it has been recorded under R. 2. The objection was filed. Where such an objection is taken on the ground that the decree has been extinguished by virtue of a compromise, held the essential question that must be asked is whether the compromise was recorded by the executing court. A new lease deed for 3 years entered into pursuant to a post-decree compromise, held could not be recognized if the deed was not registered as required under Section 107 T.P. Act r/w S. 17, Registration Act. However, final decision not based on this ground because the point was not taken up before executing court or High Court. The intention of the parties is to be shown. It is a mixed question of law and fact, and to be seen where the intention to extinguish the decree is clear and the compromise has been recorded under O. 21 R. 2 the execution of the decree cannot be proceeded with. If the intention is to keep the decree alive and to give effect to it in the manner agreed upon in the compromise, which is recorded by the court, the decree will be given effect to accordingly. No formula of specific procedure is specified in recording adjustment. Where the parties entered into a compromise agreement and filed a memo to that effect and the executing court simply dismissed the execution application as "not pressed". Respondent failing to surrender possession. Appellant filing application for execution and recovery of possession which allowed. However, respondent filing successful application for withdrawal of said order. It was held that there was no recording of the compromise by the executing court. On facts it was held that even if it was assumed that compromise was recorded, the decree could be executed because the compromise did not have the effect of extinguishing the decree. The High Court erred in dismissing appellant's revision petition.

●

19. Cr.P.C. SECTION 438/ I.P.C., SECTIONS 294, 506-B AND SCHEDULED CASTE AND SCHEDULED TRIBES (PREVENTION OF ATROCITIES) ACT, SECTION 3 (1) (X) : GRANTING OF ANTICIPATORY BAIL : NATURE OF THE OFFENCE AND THE CIRCUMSTANCES :-
2000 (3) M.P.L.J. S.N. 10
RAJKUMAR Vs. STATE OF M.P.

Applicant apprehending arrest for offences under sections 294. 506-B, Indian Penal Code and under section 3 (1) (x) of Scheduled. Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act, 1989. There was exchange of not words and in that the applicant was said to have uttered word "chamar". Contention that merely by using the word "Chamar". Atrocities Act, 1989 was not attracted. Bar of applicability of section 438 not attracted. Complainant principal of Institution and applicant a teacher in the same Institution. Incident arose due to non-disbursement of scholarship to students by complainant. Offence under section 294 is bailable and section 506-B nonbailable. Considering facts and circumstances of the case applicant directed to be released on bail on furnishing bail bond of Rs. 15,000/- to satisfaction of arresting officer. Order limited only for a period of six weeks and within that period applicant may surrender and apply for regular bail before the competent Court. **1995 (2) MPWN Note No. 70** referred.

NOTE :- Offence under Section 506-B has been declared bailable by the State Government vide Notification No. 17 (c) 76/99/21-B (ii) dated 9th August, 2000.

●

20. Cr.P.C. SECTIONS 406 & 407 : TRANSFER OF CRIMINAL CASE :-
(2000) 6 SCC 204
ABDUL NAZAR MADANI Vs. STATE AND OTHER LINKED CASE

Public confidence in fair trial should be shown to be seriously undetermined in case of non-transfer. Convenience of parties, witnesses and larger interest of society are also relevant considerations. Wild allegation of existence of communally surcharged atmosphere by itself not enough. Submission that accused would not get any assistance of lawyers of his choice due to rivalry of fundamentalists also not acceptable.

●

21. Cr.P.C., SECTIONS 125, 127 AND 397 : ENTITLEMENT OF MAINTENANCE IN INTERIM APPLICATION :-
2000 (4) M.P.H.T. 59 (NOC)
RAMESH PRASAD Vs. SMT. RAMRATI

Application under S. 125 Cr.P.C. pending since 1987. The applicant/respondent. Ramrati Bai and others not producing evidence in support of their case. Application for enhancement of Interim maintenance filed. The Magistrate enhanced the interim maintenance. The order was quashed by the High Court. Magistrate did not take into consideration the fact of the delay caused by the applicant in disposing of the application.

●

22. CRIMINAL TRIAL : DELAY BY PROSECUTION IN ADDUCING EVIDENCE : DUTY OF THE COURT :- RATIO OF RAJDEO'S CASE EXPLAINED
2000 (2) M.P.L.J. S.N. 8
M.K. BEG Vs. NIKHILESH BANERJEE

It is not mandatory to close right of prosecution to adduce evidence.

Proceedings of trial Court are delayed due to facts and circumstances of each case, and evidence of prosecution could not be concluded within a period of three years for no fault of prosecution alone. The ratio of judgment in **Rajdeo Sharma's case, AIR 1998 SC 3281** is not that in each and every case where the prosecution does not adduce evidence within the stipulated period, the right of the prosecution to adduce evidence should be closed. The Magistrate found that in view of the facts it was not mandatory to close the right of the prosecution to adduce evidence. There was nothing illegal in the order passed by the Magistrate and rather it was based on the facts and circumstances and therefore the Additional Sessions Judge was not justified in quashing the order dated 23-3-1999 passed by the Magistrate.

●

23. CRIMINAL TRIAL AND PRACTICE : LEGAL AID TO POOR ACCUSED IN CRIMINAL TRIALS :- LEAGAL AID TO BE PROVIDED
2000 (3) M.P.L.J. 272
ASMANIYA BAI Vs. STATE OF M.P.

Right to get legal aid is constitutional right of the accused. Court should ensure not only legal aid to poor accused but effective legal aid through a competent lawyer.

CRIMINAL TRIAL : JUDGES' ROLE IN CONDUCTING CRIMINAL CASES :-

In Criminal cases where the accused are poor the responsibility of the trial Judge is more. It is the duty of the trial Judge where the accused is not aided by a counsel, to provide legal aid through a competent lawyer. Even in the course of trial if the judge finds that the legal aid provided by the counsel is not up to the standard, it is not only expected of the Judge but it should be deemed to be his duty to provide the accused another counsel competent to handle the trial in an effective manner so that the accused should get proper defence. The trial Judge can in complicated and difficult cases appoint any competent lawyer to assist the court as amicus curiae. The courts cannot forget that right to get legal aid is a constitutional right of the accused. The court should ensure not only legal aid to the poor but effective leal aid through a competent lawyer. The aid provided should be "legal aid to the poor", not poor legal aid.

Judges in course of trial have to play active role by participating in questioning witnesses wherever justice demands and summoning for required oral and documentary evidence within limits laid down in procedural law.

NOTE :- Judicial Officers are requested to go through Criminal Rules and Orders (M.P.) R. No. 118 under Chapter 5 which relates to primary duties of the Magistrates relating to recording of evidence. They are not just umpires but they have to play an important role while recording evidence. Rule No. 118 runs as under :-

"118. In dealing with trials and enquiries presiding officers should remember that their position is not that of judges of civil courts who decide cases on the evidence put before them and leave it to the parties concerned to see that the evidence they produce is complete. Their primary duty is the ascertainment of the facts and the punishment of the guilty. For this purpose they have, under the Evidence Act and the Code, ample power. The fact that the prosecution is conducted by a public prosecutor or by a prosecuting inspector of police does not absolve the presiding officer from this duty."

●

24. CRIME :- MEANING :-
(2000) 6 SCC 168
T.K. GOPAL Vs. STATE OF KARNATAKA

Crime can be defined as an act that subjects the doer to legal punishment. It may also be defined as the commission of an act specifically forbidden by law; it may be of an offence against morality or social order.

PENOLOGY AND MODERN TREND :

Theories of punishment explained by the Supreme Court are not trend in case of rape as to prefer deterrent approach than therapeutic or reformative approach.

NOTE :- Judicial Officers are requested to go through the whole judgment regarding principles of criminology.

●

25. ESSENTIAL COMMODITIES ACT, SECTION 3/7: M.P. (FOOD STUFFS) PUBLIC DISTRIBUTION SCHEME, 1981, CLAUSES 2 (d) AND 6 (4) :-
2000 (4) M.P.H.T. 363
SUKHRAM Vs. STATE OF M.P.

Appellant was convicted under S. 3/7 of the Essential Commodities Act and sentenced for violation of clause 6 (4) of the Scheme of 1981 by the Court. Against it appeal was preferred. The accused was acquitted.

Paragraph 7 of the judgment is reproduced :

Validity of the scheme was considered in case of ***M.P. Ration Vikreta, Sangh and others Vs. State of M.P. and another*** **(1981 JLJ 564)** where in it was held that a Scheme was not made in exercise of any powers conferred by the order. The definition in Clause 2 (d) postulates the scheme is one which is made in exercise of its executive powers under Article 162 of the Constitution. It was held that the distribution of foodstuffs is covered by Entry 33 in List III of the Seventh Schedule and so the executive power of the State extends to frame such a scheme. It was held by the Division Bench that the scheme was not made in exercise of powers conferred by Section 3 read with Section 5 of the Essential Commodities Act and was made only in exercise of the executive powers of the State. The decision was affirmed by the Apex Court on appeal in case ***M.P. Ration Vikreta, Sangh Vs. State of M.P.*** **(AIR 1981 SC 2001).**

Clause 2 (d) is also reproduced :-

"Clause 2 (d) : "Government Scheme" means the Scheme for distribution of food/ stuffs "to consumers through fair price shops set up by the government in this behalf".

●

26. EVIDENCE ACT, SECTION 115 : ESTOPPEL :-
(2000) 6 SCC 84
SHISH RAM Vs. STATE OF HARYANA

A person having accepted a position of law and having taken benefit from it (acquiring leasehold rights to village common land in this case), held cannot later challenge the validity of such law. Legal proceedings initiated by such a person would lack bona fides.

●

27. EVIDENCE ACT, SECTION 68 : PROOF OF EXECUTION OF WILL : & SUCCESSION ACT, SECTION 59 : SOUNDNESS OF MIND OF TESTATOR :-
(2000) 6 SCC 151
PALANIVELAYATHAM PILLAI Vs. RAMACHANDRAN

Where of the three attesting witness, the one who was also the scribe was examined in proof of execution of the will, it was held that it could not be said that attesting witnesses were not examined.

Soundness of the mind of testator, it was held that on facts, where testator executed on the same day two wills on different subjects and he was found to be of sound mind in respect of one, it could not be held that he was not of sound mind while executing the other.

●

28. (1) EVIDENCE ACT, SECTION 68 AND (2) INDIAN SUCCESSION ACT, SECTION 63 : DUTY OF THE COURT REGARDING DOCUMENTS, EXPLAINED :-
2000 (3) M.P.L.J. 293
CHATRA PRATAP SINGH Vs. TULSI PRASAD

Original will not traceable. The will was registered. The attesting witnesses were dead. Applicant relied on the Will dated 2-2-1987 executed by Late Mati Bai which was in her possession and after her death, the Will was not found by the applicant. It was a registered one, therefore, the applicant filed a certified copy of the Will for the purpose of proving the Will. It was also alleged that both the attesting witnesses had expired. It was urged that the Court be pleased to grant permission to the applicant to lead secondary evidence in the shape of certified copy of the Will. The trial Court rejected the application. In revision application challenging the said order, it was held, that the question whether the applicant can lead secondary evidence by producing the certified copy of the Will has to be determined by the trial Court after coming to the conclusion that it is admissible by way of secondary evidence in one of the modes mentioned in section 65 (a) to section 65 (g) of the Evidence Act. In certain cases, the Court may also require to consider the scope of section 66 of the Evidence Act. However, it appears that no such occasion may arise in this case. It is for the trial Court to determine when an objection is raised to admissibility of document from the entire evidence on record if grounds for leading secondary evidence have been made out. For this purpose, it would be better to admit the document provisionally subject to reasoned order of the Court. The trial Court, therefore, shall permit the applicant to summon the record of the Sub- Registrar for proving the certified copy of the Will. When this document is tendered in evidence, the opposite party may raise an objection regarding admissibilty of secondary evidence. The trial Court may admit it subject to objection and permit the opposite party to cross-examine the witness if he alleged that this document can be admitted for one of the reasons given in section 65 (a) to section 65 (g) of the Evidence Act. Thereafter, the trial Court shall weigh the entire material on record and pass a speaking order whether the secondary evidence is admissible or not. Production of the certified copy of the Will may not prove the execution of the Will. The execution of the Will has to be proved in accordance with section 63 of the Indian Succession Act. It may be the certificate of the registering officer which may raise a presumption in favour of the execution of the Will. If it is successfully proved that both the attesting witnesses had

died, in such a situation, there may be other ways of proving the Will i.e. by examining the scribe or some other person who saw them attesting the Will. Even though the law may not require that Sub-Registrar shall retain the original copy of the Will, the copy of the Will kept in the office of the Sub-Registrar may in a given case be treated as the original provided it is covered by section 62 of the Evidence Act read With Explanation 2. That copy may be a carbon copy of the original Will made by on uniform process by means of single type machine. It may be then treated as an original following the decision of the Supreme Court in the case of ***Prithi Chand Vs. State of Himachal Pradesh*** reported in **AIR 1989 SC 702.** Attesting witnesses being dead, the proof of attestation and execution of an original document can be done by leading secondary evidence. For example, this may be done by examining the witnesses who are familiar with the handwriting and signature of the executant and the attesting witnesses in a given case.

NOTE :- Judicial Officers are requested to go through the provisions of Sections 61 to 73 of the Evidence Act and in particular Section 68 which is relating to proof of execution of documents required by law to be attested and non-availability of attesting witnesses and Section 69 which relates to proof where no attesting witness found.

●

29. EVIDENCE ACT, SECTION 32 (1) : DYING DECLARATION BY A.S.I. WHEN CAN BE RECORDED :-
(2000) 7 SCC 254
GULAM HUSSAIN Vs. STATE OF DELHI AND OTHER CASES

Two dying declarations. Dying declaration must be dealt with caution for the reasons when the maker of the statement had not been subjected to cross-examination. It can be accepted without corroboration. If one dying declaration is held inadmissible and the other stood corroborated. Conviction based on other dying declaration as corroborated was upheld. The dying declaration recorded by A.S.I. was not in the capacity of I.O. as investigation had not commenced by then. Such term can be treated as dying declaration.

●

30. HINDU MARRIAGE ACT, SECTIONS 24 AND 13 (1) (ia) (ib) :-
2000 (4) M.P.H.T. 61 (NOC)
HARISH CHANDRA PATHAK Vs. SMT. ASHA PATHAK

Petitioner/husband filed a suit for dissolution of marriage. The respondent/wife filed an application under Section 24 of the Act for grant of litigation expenses and maintenance for herself and for her two minor sons staying with her. Wife earning Rs. 6,750/- p.m. She was denied maintenance for herself. However, litigation expenses and maintenance allowance for her two minor sons granted. But in revision the High Court only maintained the maintenance granted to her two minor children. **(1997) 7 SCC 7** followed.

●

31. HINDU MARRIAGE ACT, SECTIONS 13 AND 23-A : CPC, O. 8 R. 6-A : APPLICABILITY OF PROVISIONS OF O. 8 R. 6-A CPC WITH REFERENCE TO SECTION 23-A OF HINDU MARRIAGE ACT :-
2000 (4) M.P.H.T. 269
SAMEERAN ROY Vs. Smt. LEENA ROY

In view of the special provisions enshrined under Section 23-A of the Hindu Marriage

Act, provisions of O. 8 R. 6-A of the Code of Civil Procedure shall not be applicable. Section 23-A of H.M. Act is a special Provision.

●

32. I.P.C., SECTIONS 302/149 : VICARIOUS LIABILITY OF MEMBERS OF UNLAWFUL ASSEMBLY :-
(2000) 6 SCC 89
UMESH SINGH Vs. STATE OF BIHAR

Specific overt act on the part of the members of the assembly need not be proved. What is necessary is prior knowledge that the offence actually committed was likely to commit in prosecution of common object. Such knowledge can be gathered from nature of the assembly, arms or behaviour at or before the occurrence. Each member is treated as a principal for the acts of each and all. Where appellants were members of an unlawful assembly which came armed with lathis and guns to take away paddy from the deceased and one of the members of the assembly threatened that any resistance by the deceased party may result in death, held on facts, in case of death of the deceased persons due to attack launched by the members of the assembly, conviction of appellants under S. 302 r/w. S. 149 was justified. Concurrent findings of the trial court and High Court upheld.

●

33. I.P.C., SECTION 376 : CRIMINAL TRIAL : EXAMINATION OF VICTIM BY DOCTORS INDEPENDENT OF REFERMENT BY POLICE SHOULD BE DONE :-
(2000) 6 SCC 188
STATE OF KARNATAKA Vs. MANJANNA

The Supreme Court placed on record its disapproval of the refusal of some government hospital doctors, particularly, in rural areas, where hospitals are few and far between, to conduct any medical examination of a rape victim unless the case of rape is referred to them by the police. Such a refusal to conduct the medical examination necessarily results in a delay in the ultimate examination of the victim, by which time the evidence of the rape may have been washed away by the complainant herself or be otherwise lost. It is expected that the appellant State will ensure that such a situation does not recur in future.

●

34. I.P.C., SECTIONS 306 AND 498-A : "CRUELTY" UNDER SECTION 428-A EXPLAINED : ABETMENT OF SUICIDE :-
2000 (4) M.P.H.T. 277
KANHAI Vs. STATE OF M.P.

Following portion is reproduced with the courtesy of M.P.H.T. Publishers :

Dead boy of wife of appellant found in a well. It was alleged that accused used to quarrel with deceased and harassed her. On the date of incident also quarrel took place in the family. Accused/husband slapped the deceased. Deceased jumped into the well along with her infant daughter. Both of them died in the well. Accused was convicted and sentenced for offence under Section 498-A and 306 IPC. Against it, this appeal was preferred. It was held that it is proved that marriage took place about 4-5 years prior to date of incident. Deceased was harassed and ill-treated. Harassment was to the extent that villagers had to intervene to subside the quarrel. She was immediately before death sub-

jected to cruelty. She was under constant threat. Deceased was subjected to utmost cruelty. The act of accused clearly amounts to abetment of suicide under Section 306 and cruelty under Section 498-A, IPC. The High Court did not interfere. Appeal dismissed. **AIR 1998 SC 474, AIR 1996 SC 67, 1990 Cr.LJ 407 and 1999 (1) MPLJ 167** distinguished.

"Cruelty" as defined in Section 498-A, IPC has two facets independent of each other. First is wilful conduct which may drive a woman to commit suicide or to cause grave injury or danger to life, limb or health (whether mental or physical) of the woman. The other facet deals with the harassment with a view to meet any unlawful demand for any property or valuable security or is on account of failure by her or any person related to her to meet such demand. It is not necessary so as to constitute cruelty within the meaning that harassment must accompany unlawful demand for any property or valuable security. Explanation (a) is clear enough to take into its ambit, the case of wilful conduct which may drive a woman to commit suicide.

●

35. JURISPRUDENCE : PROSPECTIVE EFFECT OF RULING : CONSTITUTION OF INDIA, ARTICLE 141 : INTERPRETATION OF A PROVISION REGARDING SUCCESSION TO AGRICULTURAL TENANTS :-
(2000) 7 SCC 175
PYARELAL Vs. MANIRAM

Provision regarding succession to agricultural tenants do not have prospective effect only. No one would be entitled to re-open already settled issues.

TENANCY AND LAND LAWS :- QANOON MAL RIYASAT GWALIOR, SAMVAT, 1983, S. 253 (9) r/w APPENDIX 3:-

Order of succession to Skitul malkiyat and maurusi tenant. Sister of deceased or son of the sister, it was held that not included in order of succession under S. 253 (9) r/w appendix 3. Category of "nearest blood relation" under clause (9) was circumscribed by the stipulated limitation of three- generation distance from the father, grandfather or great-grandfather of the deceased. As it was considered that the sister, upon her marriage, went out of her natal family, she was not shown in the family tree of deceased in Appendix 3. Daughter was included in the family tree by amendment (in 1943). However, also held, that the present interpretation of S. 253 (9) would be applicable prospectively only and would not entitle anyone to reopen already settled cases. Respondents, sons of sister of deceased filing suit for declaration and restoration of possession from appellants, cousins of deceased in male line of descent, having common great-grandfather. Suit decreed and decree affirmed in first appeal. It was held that the High Court in second appeal erred in affirming the decree in favour of respondents.

Order of succession to ex-proprietory or occupancy tenant. Section 253 is part of the revenue law or erstwhile Gwalior state and applies to all such tenants without reference to their personal law. The order set out in S. 253 would be applicable to all tenants, irrespective of which religion they belonged to.

HINDU LAW : INHERITANCE :-

Prior to Hindu Succession Act, 1956, Central Enactment introducing changes in Hindu law, held, cannot be read into special legislation of Princely States. Hindu Law of Inherit-

ance (Amendment Act, 1929, which included son's daughter, and sister's son and daughter in the order of succession, held, cannot be read into S. 253 of Aqnoon Mal Riyasat Gwalior, Samvat 1983. Hindu Law of Inheritence (Amendment) Act, 1929, S. 2. Princely States, special legislation of prior to merger with independent India, held would not be affected by Central enactments.

●

36. (1) MOTOR VEHICLES ACT, SECTION 147 (1) (b) AND (d) WORKMEN'S COMPENSATION ACT, SECTION 4-A (3) (B) :-
2000 (4) M.P.H.T. 195
NEW INDIA ASSURANCE CO. LTD. Vs. SOHANBAI

The penalty amount was imposed upon the insured employer, would get out of the sweep "liability incurred" by the insured employee as contemplated by the Proviso to Section 147 (1) (b) of the M.V. Act as well as by the terms of the insurance policy found in provisos (b) and (c) to Sub-Section (1) of Section 11 there of. The Insurance Company is not liable for the penalty imposed by the Commissioner, Workmen Compensation. Liability to pay penalty would be on the shoulders of owners of vehicle involved in the accident. **1998 ACJ 1 (SC)** followed.

●

37. MOTOR VEHICLES ACT, SECTION 173 (2) AND C.P.C. SECTION 115 : REVISION:
2000 (3) M.P.L.J. 246
NEW INDIA ASURANCE CO. LTD. Vs. MEGHNATH

Revision petition under Section 115 of the Civil Procedure Code not maintainable where the award is less than Rs. 10,000/-, in view of section 173 (2) of the Motor Vehicles Act.

●

38. MOTOR VEHICLES ACT, 1988, SECTIONS 3, 168, 171 AND 173 : WANT OF SPECIFIC DRIVING LICENCE :-
2000 (4) M.P.H.T. 353 (DB)
THE ORIENTAL INSURANCE CO. LTD. Vs. AGURAMA

The allegation was that the appellant/ Insurance Company argued that the truck driver did not possess a valid driving licence to drive heavy goods vehicle. Hence the liability imposed under the award is bad in law. The question was violation of conditions of the policy. The licence does not indicate that the driver was not authorised to drive heavy goods vehicle. Therefore, it cannot be said that any violation of the conditions of the policy has been committed. The arguments were rejected.

●

39. MOTOR VEHICLES ACT, 1988, SECTIONS 147, 168, 171 AND 173 :-
2000 (4) M.P.H.T. 275 (DB)
NATIONAL INSURANCE COMPANY LTD. Vs. JAGARNATH

The premium was paid and the receipt was received two days prior to the accident. The High Court held that simply because policy had not actually been issued at the time of accident took place within two days of the deposit of premium, that would not mean that there is no privity of contract between the parties.

●

40. MOTOR VEHICLES ACT, 1988, SECTIONS 149 (2), 169, 170 AND 173, C.P.C., SECTION 115 AND CONSTITUTION OF INDIA, ART. 227 : CIVIL REVISION :-
2000 (4) M.P.H.T. 288 (FB)
NEW INDIA INSURANCE CO. LTD. Vs. Smt. RFEEKA SULTAN

The question was whether the Insurance Company can challenge the quantum of compensation under Section 115 of the CPC or under Art. 227 of the Constitution of India. The Full Bench answered as under :

Where appeal is provided, revision under Section 115 of the Code of Civil Procedure or petition under Art. 227 of the Constitution of India is not available. It was further held that where insurance Company cannot file appeal, it cannot file revision under Section 115 of the Civil Procedure Code or a petition under Art. 227 of the Constitution of India. The civil revision was dismissed.

●

41. M.P. ACCOMMODATION CONTROL ACT, SECTION 23-A :-
2000 (4) M.P.H.T. 83 (NOC)
MOHAN DAS Vs. PRAMOD KUMAR

Bonafide need for one purpose is established. Decree for eviction could be passed in respect of the whole of the premises. If accommodation is not let under an express provision of contract for non-residential purpose has to be deemed to be a residential accommodation.

EVIDENCE ACT, SECTIONS 65 AND 74 :-

If a certified copy of public document is being produced, it is the only secondary evidence and is admissible. The provision is intended to protect the originals of the record from the danger to which they would be exposed by constant production in evidence.

NOTE:- Judicial Officers are requested to go through **1998 (2) M.P.L.J. 333 (Tit bit No. 39 of Joti Journal 1998, Part VI at page 58).**

●

42. (1) M.P. LAND REVENUE CODE, SECTION 251 AND (2) M.P. ABOLITION OF PROPRIETORY RIGHTS (ESTATE, MAHALS, ALIENATED LANDS) ACT, SECTION 22 :- POWERS OF S.D.O. :-
2000 (3) M.P.L.J. 223
CHANDRIKA PRASAD TIWARI Vs. STATE OF M.P.

Powers of Collector under section 251. Notification by State Government under S. 22 (2) conferring power under section 251 on Sub-Divisional Officers. Sub-Divisional Officers are competent to exercise power of Collector under Section 251 within their respective jurisdiction.

If a tank had already vested uner the M.P. Abolition of Proprietory Rights Act, 1950, there would be no question of re-vesting of the same tank. If however what vested on account of the M.P. Abolition of Proprietary Rights Act, 1950, was merely the proprietory right, then S. 251 (1) of the M.P. Land Revenue Code, 1959 will be attracted so as to abolish the non-proprietary or possessory or usufructuary right vested in the ex-proprietor. **1971 MPLJ 594= 1971 JLJ 387** relied on.

●

43. M.P. SAMAJ KE KAMJOR VARGON KE ..... PARITRAN TATHA MUKTI ADHINIYAM, SECTION 14 :-
2000 (3) M.P.L.J. 297
SETH RATILAL TRIBHUWANDAS Vs. SMT. GANGABAI

Exclusion of jurisdiction of Civil court. Dismissal of suit filed after commencement of Act does not bar application for seeking protection of Act.

Section 14 of the M.P. Samaj Ke Kamjor Vargon ke ..... Tatha Mukti Adhiniyam subject to the saving of pending proceedings as mentioned in section 11, has excluded jurisdiction of Civil Court to settle or decide or deal with any question which is by or under this Act required to be settled, decided or dealt with by the S.D.O. or the Collector. Thus, it is clear that after the Act came in force, the Civil Court ceased to have jurisdiction in a proceeding instituted thereafter to decide whether a transaction is a prohibited transaction of loan and holder is one contemplated under Act No. 3 of 1977.

The suit was filed in Septemeber 1978 when Act No. 3 of 1977 was operative and the bar created under section 14 was clearly attracted. The Court was having no jurisdiction to decide whether the transaction was prohibited transaction of loan. The question could be decided by the S.D.O. under Act No. 3 of 1977. Suit was dismissed as being barred by limitation. The dismissal of the suit filed after the commencement of the Act would not bar the application seeking protection of the Act. The Civil Suit was not given a trial by the Civil Court and was dismissed on the ground of limitation. The application in question seeking protection of Act filed on 8-4-1980 was within the limitation prescribed vide Notification No. 577-6-/7/81 dated 21st February, 1981 and was not barred by principle of res judicata. **AIR 1988 MP 311** and **AIR 1996 SC 973** referred to.

●

44. MUSLIM WOMEN (PROTECTION OF RIGHTS ON DIVORCE) ACT, SECTIONS 3 AND 4 : DISSOLUTION OF MUSLIM MARRIAGE : BY DIVORCE OR DEATH :
2000 (4) M.P.H.T. 79 (NOC)
JAVED RAZA Vs. RAHMAT NAWAZ

Dissolution of marriage by death does not confer status of divorced woman on deceased wife. The respondents are not legally entitled to file application under Section 3 read with Section 4 of the Act. They can file a civil suit. The respondents claim amount of Mehar and also of gifts under Sections 3 and 4 of the Act which were given at the time of marriage. The wife of the petitioner, who was mother of respondent No. 1 was killed by the petitioner. A woman who is legally divorced by her husband or when he obtains divorce, she is said to be a divorced wife.

●

45. NATIONAL SECURITY ACT, SECTION 3 (2) : DISTINCTION BETWEEN "LAW AND ORDER" AND "PUBLIC ORDER" :-
2000 (3) M.P.L.J. 188
CHARAN SINGH Vs. UNION OF INDIA

Continuous engagement of a man in crime and manner in which crimes are being committed would certainly persuade competent authority to take a preventive action.

There is a subtle and settled distinction between "Law and Order" and "Public Order". Whether a particular person by his acts is committing breach of law and order or is acting

in a manner affecting the maintenance of the public order is a question of degree and the extent of the reach of the act upon the society. In a given case number of the breaches may not affect the public order but at the same time even a single act may disturb the public order. Whenever an offence is committed it contravenes the law and affects the order but if it affects the community or public at large then such single act in itself would be sufficient to affect the maintenance of the public order. It would always depend upon the facts and circumstances of a case as to whether the act or acts of the person concerned were affecting law and order or were affecting the maintenance of public order. If the nature of the act and the place where it is committed has the effect on the public at large then certainly such an act would be described as an act affecting the maintenance of the public order. The authority has to see whether the case relating to law and order in fact affects the public order or not. Continuous engagement of a man in the crime and the manner in which the crimes are being committed would certainly persuade the competent authority to take action rather a preventive action, to prevant the man from affecting the public order. The effect of engagement of a man in commission of crime and leading a crime life would certainly affect even tempo of the life of the community.

●

46. N.D.P.S. ACT, SECTION 50 :- COMPLIANCE OF -
2000 (3) M.P.L.J. S.N. 5
MUNNALAL Vs. STATE OF M.P.

Accused appellant vide alleged notice given opinion for his search before Magistrate only and not before Gazetted Officer. Compliance of section 50 was partial and not total. Conviction of appellant under section 8 read with section 20 (b) (i), N.D.P.S. Act set aside. **1995 Cri. L.J. 3590** relied on.

●

47. NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, SECTION 138 :-
2000 (3) M.P.L.J. 216
JAISWAL NECO LIMITED Vs. ISHER ALLOY STEELS LTD.

As per requirement of section 138 of the N.I. Act, the cheque is to be presented in the bank within a period of six months from the date on which it is drawn or within the period of its validity whichever is earlier. There is no provision in section 138 of the Negotiable Instruments Act that such presentment should be in the drawer's bank only. The cheque can be presented either in the payee's bank or in the drawer's bank within a period of six months from the date on which it was drawn. ***A.B.K. Publicataions Ltd. and Ors. Vs. Tamil Nadu Newsprint and papers Ltd. 1999 (3) Crimes 97*** followed. ***Om Prakash Vs. Gurucharan Singh, 1997 (3) Crimes 433 (P&H), Arun Bhai Nilkanthrai Vs. Jayaben Prahladbhai through Her Power of Attorney and another, 1999 (3) Crimes 252, Guj.*** dissented.

●

48. NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, SECTIONS 138, 138 PROVISO (c) AND 142 (b) :- MINIMUM TIME LIMIT FOR FILING COMPLAINT : NO SUCH TIME LIMIT- Cr.P.C. SECTION 190 : TAKING COGNIZANCE OF COMPLAINT WHICH IS PREMATURE EFFECT OF :-
(2000) 7 SCC 183 = AIR 2000 SC 2946
NARSINGHDAS Vs. GOVERDHAN DAS

With the courtesy of Eastern Book Company, Lucknow, SCC publishers, the following portion is reproduced :-

It was held that there is no minimum time-limit Where the complaint was filed before the arising of cause of action in terms of S. 138 proviso (c), held, instead of dismissing the complaint, taking of cognizance could be postponed till the arising of cause of action. In the instant case although complaint was filed before the expiry of the statutory period prescribed in proviso (c) to S. 138, trial court had taken cognizance after the expiry of that period. Hence conviction by the trial and appellate courts upheld. High Court erred in reversing the said decisions on the ground that the complaint was premature.

Sentence- Mitigating factors Accused having paid a sum of Rs. 3,94,243 which included the cheque amount of Rs. 2,30,000 as well as interest payable thereon. In such circumstances, sentence of six months' simple imprisonment awarded by trial court, substituted by Supreme Court by a fine of Rs. 5000.

The respondent borrowed Rs. 2,30,000 from the appellant and issued a postdated cheque in his favour. On 6-10-1994, the cheque was dishonoured by the bank due to "insufficient funds". The appellant served a notice upon the respondent on 26-10-1994 intimating him of the bouncing of the cheque and demanding repayment of the amount. The respondent did not respond. Therefore, the appellant filed a complaint under the Negotiable Instruments Act on 8-11-1994. The complaint was returned due to some defects therein. After the same was refiled the Court took cognizance on 17-11-1994. The trial court found the respondent to be guilty and sentenced him to simple imprisonment for six months. The appellate court upheld the decision but the High Court set aside the conviction on the ground that the complaint, having been filed within less than 15 days from the date of the notice, was premature. Allowing the appeal, the Supreme Court held that.

The compliance of proviso (c) to Section 138 enables the court to entertain a complaint. Section 142 (b) prescribes a period within which the complaint can be filed from the date of the cause of action arising under proviso (c) to Section 138. No period is prescribed before which the complaint could not be filed, and if filed without disclosing the cause of action in terms of proviso (c) to Section 138, the court may not take cognizance till the time the cause of action arises to the complainant.

"Taking cognizance of an offence" by the court has to be distinguished from the filing of the complaint by the complainant. Taking cognizance would mean the action taken by the court for initiating judicial proceedings against the offender in respect of the offence regarding which the complaint is filed. Before it can be said that any Magistrate or court has taken cognizance of an offence, it must be shown that he has applied his mind to the facts for the purpose of proceeding further in the matter at the instance of the complainant. If the Magistrate or the court is shown to have applied his mind not for the purpose of taking action upon the complaint but for taking some other kind of action contemplated under Cr.P.C. such as ordering investigation under Section 156 (3) or issuing a search warrant, he cannot be said to have taken cognizance of the offence.

Mere presentation of the complaint in the court cannot be held to mean that its cognizance had been taken by the Magistrate. If the complaint is found to be premature. it can await maturity or be returned to the complainant for filing later and its

mere presentation at an earlier date need not necessarily render the complaint liable to be dismissed or confer any right upon the accused to absolve himself from the criminal liability for the offence committed.

In the instant case mere presentation of the complaint on 8-11-1994 when it was returned to the appellant-complainant on the ground that the verification was not signed by the counsel, could not be termed to be an action of the Magistrate taking cognizance within the meaning of Section 142 of the Act. No cognizance was taken on 8-11-1994, but the Magistrate applied his mind and took cognizance only on 17-11-1994. The High Court erred in holding the complaint to be premature and dismissing the same on that ground.

Therefore, the impugned order of the High Court is set aside and the conviction of the respondent is upheld.

However, the respondent has admittedly paid the appellant a sum of Rs. 3,94,243.33 which includes the cheque amount and the interest payable thereon. Therefore, no useful purpose would be served by sending the respondent back to jail as the interests of justice would be served by imposing a penalty of fine alone. Hence, the sentence of imprisonment awarded to the respondent is substituted with the imposition of fine of Rs 5000 provided that the same is deposited within two months.

NOTE :- Judicial Officers are requested to go through 2000 pt. 5 **'Joti Journal'** at page 587 'Jagte Raho'.

●

49. PROCEDURAL LAW : HOW TO APPLY :
(2000) 6 SCC 179
HARESH DAYARAM Vs. STATE OF MAHARASHTRA

Where a statute prescribes a procedure for doing someting, held, the procedure must be adhered to.

ARBITRATION AND CONCILLIATION ACT, 1996, SECTIONS 73 & 74 : SETTLEMENT OF AGREEMENT :

Settlement of agreement is final and binding on the parties and persons claiming under them, if it is signed by the parties since only then does it acquire the status, effect and legal sanctity of an arbitral award. Further it was held that the Act makes a clear distinction between arbitration proceedings and concilliation proceedings. Conciliator hearing submissions of counsel for parties on possible terms for settlement. Then drawing up settlement and submitting his report to High Court under sealed cover, without showing it to, or obtaining signatures, of the parties. It was held that High Court erred in summarily rejecting objections raised by appellant to the report of the conciliator.

●

50. QAWAID MUAFIDARAN (GWALIOR), REGULATION 13 :-
2000 (3) M.P.L.J. 172
STATE OF M.P. Vs. MANDIR SHRI KHANDERAO

Auction of Maufi agricultural holdings attached to Diety or Devsthanam. So long as rights of Muafidar were not extinguished vesting properties including agricultural holdings in the State and revenue records were corrected showing the same as "Milkiat Sarkar"

under the Management of department of Aukaf relating to Devasthanam there could be no occasion for interfering in the management of the holdings vesting in the diety or Devasthanam in any manner. Order of Single Judge therefore that properties including agricultural holdings attached to Devasthanam could not be auctioned by State Government by taking its management in its hands unless some Rules and Regulations are framed was justified. **1999 RN 25** referred.

●

51. RENT CONTROL AND EVICTION : TRANSFER OF PROPERTY ACT : SECTION 116 : HOLDING OVER BY LESSEE : TENANCY FOR FIVE YEARS :-
(2000) 7 SCC 232
BHUNESHWAR PRASAD Vs. UNITED COMMERCIAL BANK

Fresh tenancy created after expiry can be inferred, from the conduct of the parties. The tenant must, however, establish that rent was accepted from him as a legal rent and not rent from a statutory tenant who is directed under the Rent Control Laws. Acceptance of rent equivalent to rent previously fixed or amount fixed as standard rent would not amount to acceptance of rent within meaning of S. 116 of T.P. Act.

●

52. SICK INDUSTRIAL COMPANIES (SPECIAL PROVISIONS) ACT, SECTION 22 :-
2000 (3) M.P.L.J. 263
KESHARI STEELS Vs. M.P.E.B.

Encashment of bank guarantee is a matter between bank and beneficiary It does not entail any action against person at whose instance it was given Bank Guarantees could not be treated property of the person furnishing the Bank Guarantee to attract bar under section 22.

A proceeding under section 22 of the Sick Industrial Companies (Special Provisions) Act postulates some kind of action against the party. An encashment of a bank guarantee does not entail any such action against the person at whose instance it was given. It is a matter between the bank and the beneficiary and has nothing to do with the third party who was instrumental initially in its making. A Bank guarantee ordinarily cannot be said to be the property of the person who had a hand in furnishing it. He washes his hands off the transaction once the Bank has taken upon itself to stand guarantee and from here on its value is in trust for the beneficiary. Thus looking at it from this angle also the disputed bank guarantees could not be treated property of the person furnishing the guarantee so as to attract the bar under section 22 of the Sick Industrial Companies (Special Provisions) Act. Where the consumer had furnished Bank Guarantee in pursuance of the agreement with the Electricity Board in terms of clause 27 (a) of the agreement and the consumer having been in arrears of Electricity Charges the Electricity Board sought to encash the Bank Guarantee which was objected to putting for the bar under section 22 of the Sick Industrial Companies (Special Provisions) Act.

Held, that the encashment of the guarantee did not tantamount to any coercive proceeding directed against the property of the sick company as contemplated by section 22 of the Act and would not thus attract the bar contained therein. **1996 (5) SCC 450,** Rel.

●

Matkuli, Pachmarhi Road, Pipariya, as the Sagon log were being allegedly transported by the said vehicles. The case was registered as FOR 2205/17 dated 18-5-1997 for the purpose of confiscation of the seized tractor and trolley as well as the wooden log. The Director. National Park, Pachmarhi has passed an order under Section 39 (1) (d) of the Wild Life Protection Act (for short "the Act") as amended by the Act No. 44 of 1999, confiscating the tractor and trolley and wooden log in favour of the State Government. Against the said order, a writ petition was filed by the petitioner which was ultimately heard by the Full Bench of this Court in **W.P. No. 3769/97** (***Umashankar Bhargava Vs. State of M.P.***) The Full Bench of this Court held that mere seizure of any property including vehicles on the charge of commission of an offence under the Act would not make the property to be of the State Government under Section 39 (1) of the Act. It was further held that such property including the vehicle seized on accusation or suspicion of commission, of an offence under the said Act can, on relevant ground and circumstances, be released by the Magistrate pending trial in accordance with Section 50 (4) read with Section 451 of the Code of Criminal Procedue. The petitioner has also filed an application before the learned trial Court for getting the tractor and trolley released on Supurdnama. It was reported by the Government Advocate before the learned Additional Chief Judicial Magistrate that the State intended to file SLP before the Supreme Court against the said order of this Court and it was also reported by the counsel for the petitioner that a contempt petition was also being filed against the Forest Authority, the learned trial Judge, therefore, postponed the consideration of the application till the matter is decided either by this Court in contempt proceedings or by the Supreme Court in the SLP. Being aggrieved by the said order postponing the consideration, the present petition has been filed.

It is contended by the learned counsel for the respondent that no SLP has yet been filed before the Supreme Court against the order of this Court in W.P. No. 3769/97. It is also reported by the learned counsel for the petitioner that no contempt application has been filed by the petitioner before this Court. Learned counsel for the petitioner further contended that it was not proper on the part of the learned Magistrate to postpone the consideration of the application as the order of this Court in the above writ petition is absolutely clear and binded on both the parties.

Having heard the learned counsel for both the parties, I am of the view that this petition deserves to be allowed. Since the matter has already been decided by the Full Bench of this Court, it was not proper on the part of the learned Magistrate to postpone the consideration of the application. The learned Magistrate has nothing to do with the decision in the contempt proceedings, if any-Secondly unless the order dated 28-10-1999 passed by this Court in the said writ petition is quashed by the Supreme Court, it is a valid law and binding on the trial Court, therefore, the postponement of consideration of the application is neither proper nor justified and therefore the impugned order is not sustainable in law. The petition is, therefore, allowed. The impugned order dated 4-7-2000 is quashed. The learned Magistrate is directed to consider the application on merit in view of the decision of this Court in the said Writ Petition No. 3769/1977.

●

OPINIONS AND VIEWS EXPRESSED IN THE MAGAZINE ARE OF THE WRITERS OF THE ARTICLES AND NOT-BINDING ON THE INSTITUTION AND FOR JUDICIAL PROCEEDING.

53. SERVICE LAW : DEPARTMENTAL ENQUIRY : DEPARTMENTAL ENQUIRY AFTER RETIREMENT NOT PROPER :-
2000 (4) M.P.H.T. 65 (NOC)
STATE OF M.P. Vs. SHRI R.K. SHARMA

After attaining the age of superannuation cannot be held a relationship between master and servant did not exist between state and employee.

●

54. SERVICE LAW : PROMOTION : SEALED COVER PROCEDURE : OBJECT OF :-
(2000) 7 SCC 210
DELHI JAL BOARD Vs. MAHINDER SINGH

Right to be considered by D.P.C. is a fundamental right under Art. 16 subject to the condition that the claimant is eligible and is with the zone of consideration. Where the departmental enquiry pending at the time when DPC had met and adopted the sealed cover procedure, ended in exoneration but by that time sealed cover procedure, ended in exoneration but by that time another departmental enquiry was initiated, pendency of the latter departmental enquiry, held would not bar the benefit of the recommendation of DPC to the employee concerned. The findings of the disciplinary inquiry exonerating the officer would have to be given effect to as they obvisously relate back to the date on which the charges are framed. **The doctrine is known as relation back.**

WORDS AND PHRASES "." RELATION BACK :-

Functions of punishing authority if exonerated, retrospective operation of order of exoneration passed in the departmental enquiry, held, relate back to the date of framing of charge. This is known as Doctrine of Relation Back.

●

55. (1) WILD LIFE (PROTECTION) ACT, SECTIONS 39 (1) (d), 39 (1) AND 50 (4) (2) Cr.P.C., SECTIONS 451, 397 r/w SECTIONS 401 AND 482 :-
2000 (4) M.P.H.T. 49 (NOC)
UMASHANKAR Vs. STATE OF M.P.

Postponement of contempt application by the ACJM on merits not desired. The petitioner filed application before the ACJM for getting the tractor and trolley released. A Writ Petition No. 3769/97 filed by the petitioner. The Full Bench of this Court held that mere seizure of property including vehicles on the charge of commission of an offence under the Act would not make the property to be of the State under Section 39 (1) of the Act. The State Government filed SLP before the Supreme Court against the order of the High Court. The petitioner filed a contempt proceedings before the High Court against the Forest Authority. The Magistrate adjourned the consideration of the application till the matter is decided either by this court in contempt proceedings or by the Supreme Court in SLP. High Court directed the Magistrate to proceed and dispose of the application.

The whole order is reproduced here :

This is a criminal revision under Section 397 read with Sections 401 and 482, Cr.P.C. against the order dated 4-7-2000 passed by the learned Additional Chief Judicial Magistrate, Pipariya, District Hoshangabad.

The facts giving rise to this petition are these : The tractor and Trolley No. M.P. 05-A-9268 and M.P. 05-A-9269 have been seized by the Forest Department of Game Range,